१ ओअंकार (੧ੳ) सति गुर प्रसादि

नाम व साधना

मूल रूप में

'गुरबाणी इसु जग महि चानणु' द्वारा प्रकाशित पुस्तक

लेखक एवं संपादक : स. सरदारा सिंघ

क्रांतिकारी जगत् गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

जसबीर सिंघ Ph. : (0172-2696891), 09988160484

Type Setting : Radheshyam Choudhary
Mob. : 098149- 66882

Download Free जसबीर सिंघ

इकु नामु बोहहु बोवहु

मानुष्य जन्म दुर्लभ है, ऊँचे भाग्य से मिलता है। इस को प्राप्त करने को लिए देवी-देवते भी तरसते हैं, क्योंकि यही योनि है जिस को द्वारा जीव परमेश्वर को पा सकता है। परमेश्वर को मिलने का एक ही साधन 'नाम' है। मानुष्य का प्रयोजन ही गोबिन्द मिलने का है अत: अन्य कार्य काम नहीं आयेगें।

नाम साधना को अंग्रेजी में मैडीटेशन(Meditation) कहते है, जिस का अर्थ 'deep religious thought over a particular subject, serious absorption and contemplation' इस्लाम में इस को 'इबादत' कहते है अत: भारतीय धर्मो में 'भक्ति'।

नाम सर्वोतम धर्म है, नाम (याद) सुकृत है। असल में गुरु का सिक्ख वह ही कहला सकता है जो अंमृत वेला के समय जाग कर अथवा ''झालाघे' उठ कर नाम में लीन होता है, सूर्य उदय होते गुरबाणी का गायन करता है अत: फिर सारा दिन, उठते-बैठते, श्वास-ग्रास नाम जपता है। प्रभु को भूलना अथवा अचेत रहना सब से बड़ा पाप है।

सिक्खी सहज मार्ग है। गृहस्थ जीवन में दुख-सुख, अमीरी-गरीबी मान-अपमान, लाभ-हानि में समानता रखनी अत: अडोल रहना, सहज मार्ग कहलाता है अत: सहज अवस्था में जपने की प्रेरणा है। उद्यम तथा मेहनत फिर भी जरूरी है। मेहनत का अर्थ कठिन तप करने या एकाँतवासी हो जाना नहीं है। सूर्य के उदय से पहले जागना अत: नाम में लीन होना, नाम साधना का एक जरूरी अंग है।

शब्द-सुरत का मेल, मति, मन बुद्धि तथा: जिह्बा श्रवण तथा: नेत्रों के ताल-मेल से होता है। हृदय में याद, प्रेम तथा: सर्वव्यापकता की आराधना होती है। जिह्बा नाम जपती है, श्रवण ध्वनि सुनते हैं, तथा: नेत्र प्रभु का दर्शन करते है। इस सारे गठ-जोड़ का संयोग प्रेम है।

जो कुछ ऊपर कहा गया है, सं सरदारा सिंघ जी ने अपनी पुस्तक 'नाम-साधना' में बहुत अच्छे ढंग से तथा विस्थार पूर्वक लिखा है। लेखक शैली बहुत प्रस्नंसा-योग्य है अत: नाम साधक इस से बहुत लाभ उठा सकते हैं।

ब्रिगे. हरदित सिंघ (रिटा.)

1380, सैक्टर 33-सी

चण्डीगढ़

दिनांक : 14-7- 1995

नानक कै घरि केवल नामु

वास्तव में मनुष्य के जीवन की आत्मिक पूँजी नाम है। इस के बिना जीवन जीना अर्थहीन होगा। गुरसिक्खों के लिये सत्गुरुओं ने महान कृपा कर के, शब्द रत्न, जो आत्मिक बरकत के हीरों से जुड़ा है, दृढ़ करवाया है। सत्गुरु जी ने सुरत को शब्द गुरु के साथ जोड़ने की प्रेरणा दे कर आत्मि जीवन जीने की युक्ति का प्रकाश किया है।

मनुष्य को जो जन्म मिला है, परमात्मा के स्मरण के कारण मिला है। जिन का गर्भ के समय स्मरण नहीं हुआ, वे गर्भ में ही नष्ट हो गये। इस का अभिप्राय है हमारा जन्म ही स्मरण के आधार पर हुआ है। यदि जन्म स्मरण के आधार पर हुआ है, अत: गर्भ में नष्ट होने से बच गये हैं तो यह बात निश्चित है कि यदि जीवन में स्मरण नहीं तो जीवन नष्ट हो जायेगा। जीवन सुरक्षित रह सकता है केवल स्मरण के कारण। स्मरण के बिना जीवन रुखा होगा। स्मरण मनुष्य की आत्मिक उच्च अवस्था के लिये अत्यन्त आवश्यकत है। स्मरण ही निरंकार की सर्वव्यापकता है : -

हरि सिमरन महि आप निरंकार ।।

इसलिये दास को बहुत ही प्रसन्नता हुई है कि गुरमुख प्यारे जहाँ **'गुरबाणी इसु जग महि चानणु'** द्वारा गुरु - शब्द का लंगर बाँट रहे हैं, वहाँ सत्गुरुओं ने कृपा कर के नाम साधना के विषय पर पुस्तक लिखवा कर एक महान सेवा करवाई है। जिस में बहुत ही सुंदर श्रृंखला - क्रम में नाम की परिभाषा, नाम स्मरण की क्रिया, नाम स्मरण की युक्ति, मन बारे विशेष रूप में विस्थार सहित ज्ञान, ध्यान की महत्त्वता, सकाग्रता, एकाग्रता से नाम रस, हुक्म से वैराग्य के बारे में विचार तो मन को विशेषतया स्पर्श करते हैं।

सत्गुरु जी कृपा करें, गुरमुख प्यारे स. सरदारा सिंघ जी को अधिक प्रेरणा दे कर ऐसी सेवा लेते रहें।

दिनांक : 20 – 07 – 1975

दास :

जसबीर सिंघ खालसा (खन्ने वाले)

अकाल आश्रम, सोहाना, मोहाली

गुरमुख गाडी राहु चलंदा

मुझे पुस्तक 'नाम साधना' पढ़ने का अवसर मिलना। पुस्तक का अध्ययन करने पर इस की कुछ विशेषताओं ने अपनी ओर खिंचावट पैदा की। स. सरदारा सिंघ ने उच्च विद्या के धारणी होते हुए भी, अपनी पुस्तक की भाषा साधारण रखी है अत: कठिन शब्दवाली से संकोच किया है, जिस को प्रत्येक व्यक्ति सरलता से समझ कर सहज ही स्मरण से जुड़ जाता है। और आप ने प्रत्येक विचार का आधार गुरबाणी को ही बनाया है। पुस्तक पढ़ते हुये ऐसे प्रतीत होता है जैसे व्यक्तिगत तौर ते गुरबाणी सिक्ख को प्रत्यक्ष आदेश दे रही हो। हे भाई! यदि यह तेरा नाम स्मरण की ओर पहला कदम है तो बोल कर नाम का जाप शुरु कर, समय के साथ, बिना बोले सुरति के अंदर स्मरण चलेगा, अंत में अजपा जाप बने जायेगा।

इस पुस्तक को समझ कर पढ़ने से गुरु तथा नाम की खोज के लिये जिज्ञासु की खोज सहज ही पूरी हो जायेगी। हालांकि आध्यात्मिक विषय बहुत विशाल एवं उलझा हुआ है परन्तु लेखक ने इसे क्रियात्मक मार्ग दर्शन (a practical treatise) देने में सफलता प्राप्त की है।

भाई साहिब का कथन है कि गुरमत का दिखवाया राह 'सहज का मार्ग है, हठ का नहीं। यह 'गाडी राहु' आसान सीधा मार्ग है। इस पथ पर चलने में प्रेमा–भक्ति सहायक है। धीरे–धीरे, समय के साथ शब्द–सुरति की कमाई का श्रोत बहने लगता है अत: नामी में नाम लेवा अभेद हो जाता है। गुरबाणी फरमाती है: –

सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे ।।

'शब्द–सुरति' स्मरण का सर्वश्रेष्ठ मार्ग स्वयं को पहचानने का है।

मनु तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु ।।

इस मार्ग में कर्म–कॉंड (Rituals) का कोई स्थान नहीं, ना ही और किसी की पूजा का हुक्म है :

ऐको जपि ऐको सालाहि ।।

ऐकु सिमरि ऐको मन आहि ।।

इस मार्ग के अंदर निष्काम सेवा सोने पर सोहागा है। यह शिरोमणि मार्ग है वाहिगुरु को मिलने को (Royal road to realize the Lord) संगत करने से विश्वास और दृढ़ होता है: –

सतसंगति मिलि बिबेक बुधि होई ।।

हमारी सत्गुरु जी के आगे प्रार्थना है कि आप जैसे नाम का रसपान करने वाले गुरमुख प्यारों को अधिक बल तथा उत्साह प्रदान करें ताकि 'नाम' के संदर्भ में पेचीदा विषयों को सरल बोली के द्वारा स्पष्ट रुप में संगत तक पहुँचाने की स्वार्थहीन सेवा में इसी प्रकार जुटे रहें।

डा. प्यारा सिंघ

523, फेज़–2

ऐस. ए. ऐस. नगर (मोहाली)

कोई जाणै कैसा नाउ

हर मनुष्य की अन्तरात्मा एक समय यह अनुभव करती ही है कि उस की वास्तविकता क्या है?उस ने अंत में कहाँ जाना है?फिर भी उस सत्य से आँखें मूँद कर संसारी विषय-भोग अत: विषय विकारों में ग्रस्त रहता है। उस का परिणाम क्या निकलता है?दुविधा, अहंकार, लोभ, तृष्णा, भटकना दु:ख तथा संताप। वैसे भी मनुष्य को कष्ट के समय ही भगवान का ध्यान आता है, परन्तु सच यह है कि दु:ख के समय भी, मनुष्य सच्चे मन से अपने पिता, परिपूर्ण परमात्मा को याद नहीं करता। ईश्वर की याद ही उस का नाम लेना है :

फरीदा काली जिनी न राविआ धउली रावै कोइ ।।

सारी आयु मनुष्य की व्यर्थ चली जाती है अत: वह अंतिम श्वास तक मोह माया के जाल में फंसा हाय हाय करता रहता है।

हमारे लिये गर्व की बात है कि हमारे गुरुओं ने भूली भटकी मनुष्यता को उस की वास्तविकता के साथ जोड़ने के लिये अपनी सम्पूर्ण बाणी में, वाहिगुरु अकाल पुरख का नाम स्मरण करने की चेष्टा की है। गुरु ग्रंथ साहिब में सतिनामु से सम्पूर्ण बाणी शुरु कर के नाम की महिमा को सिद्ध कर के दिखा दिया है।

स. सरदारा सिंघ, संपादक, 'गुरबाणी इसु जग महि चानणु' अध्यात्मिक पक्ष से इक गुणवान, ज्ञानी अत: अति सूझवान गुरमत के लेखक हैं, जिन्होंने अभी तक गुरबाणी को खोज अत: व्याख्या के क्षेत्र में बहुत गहराई से अत्याधिक कार्य किया है। यह पुस्तक 'नाम साधना' उन का 'नाम' की खोज एवं व्याख्या प्रति गुरमत साहित्य में एक और प्रयास है। इस पुस्तक में नाम की परिभाषा, अथवा शब्द की महानता को दृढ़ किया है। उस 'सति' वाले अस्तित्व का नाम, जो स्वयं सत्य है, के गुणों से अवगत करवाया है। प्रभु के नाम का निवास हमारे अपने अंदर है। जिस मनुष्य के हृदय में गुरु के ज्ञान का प्रकाश हो गया, उस को वाहिगुरु का नाम मीठा लगने लगता है अत: उस के कपाट खुल जाते हैं। उपरन्त अंमृत रस का झरना चलने लगता है। वह आनंद ही आनंद है, विस्माद की अवस्था में पहुँच जाता है।

नाम का अभ्यास करने से ही प्रभु का नाम कठंस्थ होता है। जिज्ञासु श्वास-श्वास 'उस' के नाम का स्मरण करने लग जाता है तथा उस की सुरति एकाग्र हो कर उस की लिव प्रभु चरणों में लग जाती है। वह फिर समाधी अवस्था धारण करने लग जाता है।

प्रबुद्ध लेखक ने, नाम के संदर्भ में मनुष्य के मन की अवस्था का भी वर्णन किया है। मन जो चंचल है, मन जो स्थान-स्थान पर भटकता है, उस पर कैसे नियंत्रण पाया जा सकता है?मन को कैसे टिकाव में लाया जाये?मनोवृत्ति को किसी. चित्र, मूर्ति या स्मरण के साथ जोड़ने की आवश्यकता है कि नहीं, नाम स्मरण के लिय हमारा केन्द्र बिन्दु केवल तथा केवल गुरु ग्रंथ साहिब ही होना चाहिये। फिर देखो कि केसे लिव लगती है। बाहरी विषय विकारों से, कैसे बच सकते हैं, नित्याप्रति जीवन में हमारा व्यवहार कैसा हो कि हम नाम के साथ जुड़े रहें, जुड़ जाने की अवस्था में प्रभु प्रति वैराग्य जागता है। उस की आज्ञा में रहने का कैसे बल मिलता है?

इन बातों को लेखक ने बहुत ही सादे पर कलामयी ढंग से स्पष्ट कर के जिज्ञासु की संतुष्टि करवाई है।

गुरमति साहित्य में यह पुस्तक एक बहुमूल्य वृद्धि है, जिस पर हमें सही तौर पर गर्व करना चाहिये।

बलजीत सिंघ बली

ऐडीटर 'नगारा वीकली'

ऐस. सी. ओ. 268/1

35-डी, चंडीगढ़ ।

गुरमुखि होवै सु काइया खोजै

पुरातन समय में जो साहित्य रचा गया, वह सारे का सारा काव्य रुप में लिखा मिलता है। गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी, जिसका 12वीं सदी से 17वीं के बीच उच्चारण हुआ, गुरुओं, भक्तों अत: महापुरुषों की काव्य रुप राग–बद्ध हमारे पास सुरक्षित है।

गुरु ग्रंथ साहिब जी की बाणी हमें जीवन ढंग सिखाती है। यह संसार में जीवन व्यतीत करने का ढंग बताती है तथा इस के अलावा यह हमें अपने तन में ही ईश्वर की ज्योति को ढूँढने का ढंग अत: मार्ग दर्शन चिन्ह बताती है।

'नाम साधना' पुस्तक में लेखक ने वर्तमान युग के अनुसार साहित्य के गद्य रुप में गुरबाणी के उद्देश्य को समझने समझाने का सरल, स्पष्ट तथा: आसान भाषा में अच्छा प्रयास किया है। नाम किसी वस्तु या हालत की पहचान के लिये हम रखते हैं, इसी प्रकार गुरबाणी में 'नाम' शब्द वाहिगुरु के नाम के लिये बार बार आया है। हमारे अंदर गहरा अंधेरा है। हम अपने तन के भीतर कुछ नहीं देख कसते। हमें कुछ भी दिखाई नहीं देता।

गुरबाणी में लिखा है और: अन्य धर्म भी कहते हैं कि यह संसार बनने से पहले एक गहरा अंधेरा था तथा और कुछ भी नहीं थी। उपरन्त एक शब्द हुआ जिस के द्वारा यह सारा जगत बना। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी कहते हैं, हे जीव! तू ईश्वर से बिछुड़ कर दुखी हो रहा है एवं जन्म–मरण के चक्कर में पड़ा हुआ है। तू एक शब्द का सहारा ले कर फिर अपने अंदर घुस के ईश्वर में लीन हो कर दुखी होने से बच सकता है अत: सुखी हो सकता है। इस प्रकार गुरमंत्र शब्द, नाम द्वारा हर कोई जो अपने अंदर घुसने का प्रयाास करता है, परमात्मा को ढूँढ लेता है।

लेखक स्वयं नाम अभ्यासी हैं। नाम जपते हैं, ध्यान धरते है अत: अपनी आत्मा को अपने श्रोत परमात्मा में अभेद होने का प्रयास करने की कोशिश करते हैं। इस लिये इस विषय को बड़े ही सुंदर ढंग से सम्पन्न किया है।

हमें आशा है कि जो भी प्राणी, इस पुस्तक 'नाम–साधना' का पाठ अंत: पूरी तरह अध्ययन करेगा, अवश्य ही उस की सुरति नाम से जुड़ेगी तथा यह पुस्तक नाम अभ्यास में मार्ग दर्शन प्रदान करेगी।

कुलदीप सिंघ (डी. एस. पी. रिटा.)

कोठी नं. 516, फेज़–4, मोहाली।

नाम के धारे सगले जंत ॥
नाम के धारे खंड ब्रहमंड ॥
नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान ॥
नाम के धारे सुनन गिआन धिआन ॥
नाम के धारे आगास पाताल ॥
नाम के धारे सगल आकार ॥
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन ॥
नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन ॥
करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए ॥
नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए ॥ 5 ॥

(सुखमनी साहिब, पउड़ी – 16वीं, अंग – 284)

विषय – सूची

1. नाम की परिभाषा
2. नाम – अभ्यास
3. नाम साधना
4. मन
5. ध्यान
6. एकाग्रता
7. नाम रस
8. हुकमि रजाई चलणा
9. विरह (वियोग)
10. साराँश

नाम की परिभाषा

साधारणत: यह देखने में आया है कि जिज्ञासु संशय में पड़ा रहता है, और पूछता है कि गुरबाणी में जो बार-बार 'नाम' का उल्लेख हुआ है, वह क्या वस्तु हैं?'नाम' किसे कहा जाता है?गुरमति में इसके क्या अर्थ हैं?नाम 'नामी' और 'नाम लेवा' से क्या अर्थ है?इनका आपसी सम्बन्ध क्या है?आध्यात्मिक जीवन में इनका क्या स्थान है?इस प्रकार के प्रश्न उठते रहते है। गुरु कृपा से संक्षिप्त सी बात करके, थोड़े से शब्दों में, नाम को समझने की कोशिश करेंगे। विषय बड़ा विशाल और महत्वपूर्ण है, परन्तु संक्षिप्त शब्दों में विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

व्याकरण के अनुसार 'नाम' की परिभाषा है किसी वस्तु का नाम। जिस नाम से हम वस्तु को पुकारते हैं उसे 'नाम' (संज्ञा) कहा जाता है। जैसे तलविन्दर सिंघ, तेजिन्दर सिंघ, सिमरन जीत कौर, कुलबीर कौर, कुर्सी, मेज़, चाँद, सितारे, मकान, सड़क आदि । सारे ही किसी वस्तु या व्यक्ति को संबोधित करते हैं और बोध कराते हैं कि हम किस वस्तु के विषय में बात कर रहे हैं।

'नाम' तो हुआ किसी वस्तु की संज्ञा। एक शब्द है 'नामी', जिसका भाव है, वह वस्तु जिसका हम नाम ले रहे हैं। 'वाहिगुरु' का नाम जपते हुए जब हम वाहिगुरु, वाहिगुरु कह कर पुकारते हैं तो 'वाहिगुरु' शब्द उनके नाम के लिए प्रयुक्त करते हैं और वाहिगुरु जी के अस्तित्व को हम 'नामी' कहेंगी। जिज्ञासु, सिक्ख या नाम लेवा वह जीव होता है जो उसका नाम जप रहा है।

गुरमति या आध्यात्मिकता की शब्दावली में 'नाम' का भाव 'निरंकार' है। हमने परमात्मा, अल्लाह, गाड, रब्ब, वाहिगुरु आदि उसके नाम रख लिए। सतिगुरु जी गुरबाणी के माध्यम से समझाते हैं कि इस 'नाम' निरंकार से ही सारे संसार की रचना हुई है और नाम के सहारे ही सारा जगत, जल, थल, वनस्पति, वायु मण्डल, आकाश और पाताल खड़े हैं। जो भी नदी, नाले, समुन्द्र, धरती, आकाश, पाताल, पहाड़, जंगल या मैदान सब दृष्टिमान में बसने वाले जीव जन्तु, इन सबका कर्त्ता, स्वामी और पालक, निरंकार स्वयं 'नाम' रुप है (कोट ब्रहमंड को ठाकुर सुआमी) गुरुबाणी का फरमान है :-

नामै ही ते सभु किछु होआ बिनु सतिगुर नामु न जापै ।। (अंग-753)

नाम के धारे सगले जंत ।।

नाम के धारे खंड ब्रहमंड ।।

नाम के धीरे सिम्रित बेद पुरान ।।

नाम के धारे सुनन गिआन धिआन ।।

नाम के धारे आगास पाताल ।।

नाम के धारे सगल आकार ।।

नाम के धारे पुरीआ सभ भवन ।।

नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन ।। (अंग - 284)

भाई काहन सिंघ 'नाभा', महान कोश में 'नाम' की परिभाषा इस तरह देते हैं - ''गुरबाणी में 'नाम' कर्त्तार और उसका हुक्म बोधक शब्द भी है।''

''नामी, आदि शक्ति है, जिसे किसी नाम से पुकारना संभव नहीं, बेशक हमने उसके अनेकों नाम रख लिए हैं। कितने भी नाम रख लें, फिर भी पूरे नहीं उतर सकते। पूर्वकाल से लेकर, हमने परमात्मा के अनेक नाम रखे, अब भी रख रहे हैं और भविष्य में और भी नए नए नाम रखते रहेंगे। परन्तु उन नामों का कोई अंत नहीं होगा। वह अस्तित्व सत्य है, सत्त युक्त हैं बस सत्य ही सत्य है। उनका नाम भी सति (सत्य) ही कह सकते है। उसका नाम सत्य ही है:-

किरतम नाम कथे तेरे जिहबा ॥

सतिनामु तेरा परा पूरबला ॥ (अंग - 1083)

उसका 'सत्य' (सति) नाम, आदिकाल से भी पूर्व का है। अकाल पुरख 'सैभं' (स्वयं भू) है। भाव, उसका आभिर्भाव (प्रकटीकरण) स्वयमेव हुआ है। किसी ओर ने उसका सृजन नहीं किया । जब किसी और ने उसका सृजन नहीं किया तो नाम भी नहीं रखा। बल्कि स्वयं का सृजन करके उसने अपना नाम भी स्वयं ही रखा।

आपीनै् आपु साजिओ आपीनै् रचिओ नाउ ॥ (अंग - 463)

प्रभु के गुणों के आधार पर उसके अनेक नाम कहे जा सकते हैं परन्तु फिर भी जीव उसके पूरे नाम कहने में असमर्थ रहते हैं। किरतम नाम वे हैं जो उसके गुणों के अनुसार रखे गए हैं। उन्हें गुणवाचक नाम भी कहा जाता है। उसके कर्म नाम भी अनेक है: -

तेरे नाम अनेका रुप अनंता कहणु न जाही तेरे गुण केते ॥ (अंग - 358)

जिहवा एक कवम गुन कहीऐ ॥

बेसुमार बेअंत सुआमी तेरो अंतु न किन ही लहीऐ ॥ (अंग - 674)

दशम पिता ने 'जाप - साहिब' के आरम्भ में कहा है : -

तव सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमति ॥

कि तेरे नाम बेअंत हैं जो अकथनीय हैं। मैं तेरे कुछ कर्म नाम वर्णन करता हूँ : -

नमसतं कृपाले । नमसतं दिआले । (जाप साहिब)

वह वाहिगुरु बड़ा मिहरवान (कृपालू) है, बहुत ही दयावान है। मिहरवान् और दयावान् उसके एक एक गुण की ओर संकेत करते हैं। अत: ये कर्म नाम हैं। इसी प्रकार : -

कारन करन करीम ॥ सरब प्रतिपाल रहीम ॥

अलह अलरव अपार ॥ खुदि खुदाइ वड बेसुमार ॥ (अंग - 896)

ये सारे कर्म नाम हैं। किरतम नाम, गुणवाचक, नाम, कर्म नाम जाति नाम या सिफाती नाम, एक ही अर्थ रखते हैं ।

भाई वीर सिंघ जी, 'नाम' के विषय में लिखते हैं : -

परमेश्वर का नाम ही सार वस्तु और शिरोमणि जाना जाता है। गुरबाणी में परमेश्वर के उन नामों को, जो गुण, कर्म आदि के कारण रखे गए हैं, किरतम नाम कहा गया है। इन्हें ही दशम गुरु जी ने 'करम नाम' लिखा है। इससे यह ध्वनित होता है कि एक और नाम है, जिसे 'अकृतम नाम' कहना चाहिए। इसी को गुरु जी ने 'परा पूरबला' का विशेषता दिया है, और इसका विशेष पद 'सति' (सत्य) दिया है। 'नाम' केवल संज्ञा मात्र नहीं, नाम जप है। नाम सिमरन है। नाम लिव है। नाम व्यापक नाम में पहुँच कर तद्रूप हो जाता है, अन्त: नाम नामी की अभेदता है। अर्थात् नाम प्रेमी नामी (वाहिगुरु) को प्राप्त हो जाता है।''

नाम का संस्कृत रुप' नाम्न' है। इसका पंजाबी रुप नाम है। जिसका अर्थ है याद करना। गुरबाणी में नाम को अमृत करके भी पुकारा गया है।

अंमृतु हरि हरि नामु है मेरी जिंदुड़ीए

अंम्रितु गुरमति पाए राम ॥ (अंग - 538)

प्रभु के नाम का ठिकाना, हमारे शरीर में है। जिस मनुष्य के हृदय में गुरु के ज्ञान का प्रकाश हो गया, उसको 'वाहिगुरु' का नाम मीठा लगने लगता है। यह नाम नव निधि का दाता है : -

संतसंगि अंतरि प्रभु डीठा ॥

नामु प्रभु का लागा मीठा ॥

सगल समिग्री एकसु घट माहि ॥

अनिक रंग नाना द्रिसटाहि ॥

नउ निधि अंमृतु प्रभु का नामु ॥

देही महि इस का बिस्रामु ॥ (अंग - 293)

वर्णात्मक शब्द - वाहिगुरु', 'नाम' का बाहरी रुप है। असल में नाम गुप्त प्रसारित हो रहा है। जिज्ञासु जब गुरु की शरण में जाकर नाम जपता है तब गुप्त नाम प्रकट होता है। इस बाहरी नाम के माध्यम से, उस सर्वगुण परिपूर्ण, सर्वव्यापी तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है। वर्णात्मक शब्द, प्रकृति में गूंज रही सर्वव्यापक ध्वनि से मिलाप करवाता है, फिर वर्णात्मक शब्द अलोप हो जाता है : -

बावन अछर लोक त्रै सभु कछु इन ही माहि ॥

ए अखर खिरि जाहिगे ओइ अखर इन महि नाहि ॥ (अंग - 340)

यथा

नामु निरंजन अलखु है किउ लखिआ जाई ॥

नामु निरंजन नालि है किउ पाइऐ भाई ॥

नामु निरंजन वरतदा रविआ सभ ठांई ॥

गुर पूरे ते पाइऐ हिरदै देइ दिखाई ॥

नानक नदरी करमु होइ गुर मिलिऐ भाई ॥ (अंग - 1242)

इस तरह 'नाम' वह शक्ति या सत्ता है, जो सर्वव्यापक है, हमारे साथ है। सतिगुरु कृपा करें तो हमारे हृदय में ही दिखा देते हैं।

सतिगुरु श्री गुरु ग्रंथ साहिब की शरण में आने से, मनुष्य के हृदय में छिपा यह नाम रुपी रत्न, सतिगुरु के शब्द से प्रकट हो जाता है : -

अंतरि अलखु न जाई लखिआ ॥

नामु रतनु लै गुझा रखिआ ॥

अगमु अगोचरु सभ ते ऊचा

गुर कै सबदि लखावणिआ ॥ (अंग - 130)

यथा

इसु काइआ अंदरि बहुतु पसारा ॥

नामु निरंजनु अति अगम अपारा ॥

गुरमुखि होवै सोई पाए आपे बखसि मिलावणिआ ॥ (अंग - 112)

यह गुह्य नाम, जो अलख है, सबसे कीमती है, सतिगुरु से प्राप्त होता है। गुरु जी जिस पर कृपा करते हैं उसे नाम की 'दात' बख्शिश करते हैं। बख्शिश के बिना नाम की प्राप्ति असंभव है : -

सतिगुरु दाता नाम का पूरा जिसु भंडारु ॥

सदा सदा सालाहीऐ अंतु न पारावारु ॥ (अंग - 49)

यथा

जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई ।।

अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई ।। (अंग - 205)

संत ईशर सिंघ जी, राड़ा साहिब वाले, 'नाम' के विषय में कहते हैं: -

''वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक, दो प्रकार का नाम है, जाप और अजपा जाप। वर्णात्मक जिह्बा से उच्चारण होता है और ध्वन्यात्मक, अनहद शब्द द्वारा सुना जा सकता है। ध्वन्यात्मक नाम, अनहद शब्द से केवल अंदर ध्वनि प्रकट होती है।''

गुरमति में 'वाहिगुरु' नाम प्रामाणिक है जो गुरमति के दायरे में शामिल होने के समय पाँच प्यारों की ओर से हमें दृढ़ करवाया जाता है। इसी गुरु-मंत्र या नाम के जपने से हमारा जीवन सफल होगा : -

वाहिगुरु गुरमंत्र है जपि हउमै खोई ।

आप गवाए आपि है गुण गुणी परोई । (भाई गुरदास, वार - 13)

वाहिगुरु (नाम) गुरमंत्र को जपने से हमारा अहंकार दूर होता है। द्वैत भाव मिटता है। नाम सत्ता, अभ्यास करने वाले के अंदर जागृत होती है। वर्णात्मक नाम, गुप्त ध्वन्यात्मक नाम से मिलाता है। ध्वन्यात्मक नाम वह है, जिसे लेख के आरम्भ में, **''नाम के धारे सगले जंत''** तथा **''नाम निरंजन वरतदा रविआ सभ ठाई''** के रुप में सर्वव्यापक बताया गया है।

गुरमति का सार 'नाम' है। गुरसिख की धन राशी ही नाम है : -

नानक कै घरि केवल नामु ।। (अंग - 1136)

रत्न जवाहरात की खोज, हम अपने शरीर से बाहर की वस्तुओं में करते हैं, परन्तु गुरबाणी अनुसार ये सब खजाने हमारे अंदर विद्यमान हैं। मनुष्य जन्म उसी का सफल होता है, या जीवन मनोरथ को वही जिज्ञासु प्राप्त करता है जो अपने मन की प्रवृत्तियों को बाहर से हटा, अन्तर्मुखी करके, 'नाम' में जोड़ता है :

गिआनीआ का धनु नामु है सहजि करहि वापारु ।।

अनदिनु लाहा हरि नामु लैनि अखुट भरे भंडारा ।।

नानक तोटि न आवई दीए देवणहारि ।। (म - 3, अंग - 68)

सो नाम धन की राशी एकत्रित करना हमारा परम धर्म है। नाम जपने के बिना सिक्ख कैसा? सिक्ख के लिए हुक्म है: -

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए

सु भलके उठि हरि नामु धिआवै ।। (अंग - 305)

इसके बिना तो हम नाम मात्र के सिक्ख हैं। सतिगुरु जी की बाणी, श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के समूचे वचनों की वीचार से तत्व यही निकलता है कि नाम के बिना सारे कर्मकाण्ड व्यर्थ हैं। 'नाम' पदार्थ ही हमारे जीवन और जीवनोपरान्त सहायक होता है। नाम हमेशा अंग संग रहता है। यह शरीर छोड़ने के बाद भी प्रभु की दरगाह में साथ देता है: -

साथि न चालै बिनु भजन बिखिआ सगली छारु ।।

हरि हरि नामु कमावना नानक इहु धनु सारु ।। (अंग - 288)

अत : इस प्रकार के नाम को, गुरबाणी में बार बार जपने के आदेश मिलते हैं। गुरबाणी का कोई भी पद ऐसा नहीं जो नाम सिमरन को प्रेरित नहीं करता :

नामु जपहु गुरमुखि परगासा ।।

नामु बिना मै धर नहीं काई

नामु रविआ सभ सास गिरासा ।। (अंग - 367)

यथा

हरि हरि नाम की मनि भूख लगाई ।।

नामि सुनिऐ मनु त्रिपतै मेरे भाई ।।

नामु जपहु मेरे गुरसिख मीता ।।

नामु जपहु नामे सुखु पावहु

नामु रखहु गुरमति मनि मनि चीता ।। रहाउ ।।

नामो नामु सुणी मनु सरसा ।।

नामु लाहा लै गुरमति बिगसा ।।

नाम बिना कुसटी मोह अंधा ।।

सभ निहफल करम कीए दुखु धंधा ।।

हरि हरि हरि जसु जपै वडभागी ।।

नानक गुरमति नामि लिव लागी ।। (अंग - 367)

नाम - अभ्यास

(आरम्भिक शब्द)

अभ्यास होता है, किसी क्रिया को बार बार करना, निरन्तर दोहराते रहना। वाहिगुरु जी का नाम, बार बार प्रेम सहित उच्चारण करने को नाम - अभ्यास, नाम की कमाई या नाम साधना कहा जाता है। नाम साधना करने वाला जिज्ञासु, गुरु कृपा द्वारा कई अवस्थाओं में विचरण करता है :

बार बार वर्णात्मक नाम का रसना द्वारा उच्चारण करता है।

लम्बे अभ्यास के बाद, रसना द्वारा जप बंद हो जाता है और कण्ठ से शब्द का उच्चारण होने लगता है।

सतिगुरु के हुक्मानुसार, समय पाकर, कण्ड 'नाम' को हृदय या सुरति की ओर रवाना कर देता है।

सुरति मण्डल में 'वाहिगुरु' नाम का अभ्यास करते करते, श्वास द्वारा जाप होने लगता है और यह अजपा - जाप बन जाता है। अजपा - जाप में कई बार हमें शंका होने लगती है कि 'जाप' बंद हो गया, परन्तु यह निरंतर चलता रहता है।

जब सुरति में, दिन - रात, चौबीस घंटे नाम बसा रहे, उसे सिमरन या अराधना कहा जात है। यह निरंतर याद की अवस्था है: -

ऊठत बैठत सोवत नाम ।।

कहु नानक जन कै सद काम ।। (अंग - 286)

दिन रात, बना प्रयत्न के सिमरन होता है। भाव, बिना उद्यम के, सहज रुप से सिमरन जारी रहता है:

वाजे बाझहु सिंङी वाजै तउ निरभउ पद पाइये ।। (अंग - 730)

जैसे, साईकल, स्कूटर कार आदि को चलाने के लिए आरम्भ में काफी समय तक बड़ी कोशिश करनी पड़ती है, अभ्यास करना पड़ता है। परन्तु जब प्रयत्न करते करते यह क्रिया हमारे शरीर और सुरति में पक जाए तो फिर साईकल, स्कूटर चलाने के लिए अधिक कोशिश या ध्यान की जरुरत नहीं पड़ती, बल्कि अपने आप, थोड़ा सा ध्यान देने पर ही यह क्रिया चलती रहती है। यहाँ

अंतर यह है कि साईकल चलाने के लिए, बाद में विशेष ध्यान की आवश्यकता नहीं, परन्तु सिमरन पूरे ध्यान से ही होता है। सिमरन में प्रेम भाव से, शत प्रतिशत ध्यान जोड़ने की जरुरत है :-

अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ ।। (अंग-1291)

सतिगुरु जी की कृपा से जब नाम साधना परिपक्व हो जाती है तो वाहिगुरु जी की स्मृति सदैव बनी रहती है। समझ लो कि तुम्हारी सुरति, प्रभु की याद में जुड़ गई। अब स्मृति केवल स्मृति रह गई। क्रिया कैसे हो रही है, पता नहीं चलता, परन्तु नाम का निवास सुरति में अनुभव होता है। सिमरन जारी रहता है। ध्यान में शब्द टिका रहता है।

इस तरह शब्द-सुरति की ध्यान मग्नता की अवस्था बनती है। इस अवस्था में गुप्त नाम, जिसे ध्वनात्मक नाम कहा जाता है, प्रकट होता है। नाम की ध्वनि, अन्तरात्मा में जागृत होती है। दशम द्वार के दर्शन होते है। अपने निजत्व की पहचान होती है। अनहद शब्द, अलौकिक कीर्तन सुनाई देते हैं और जिज्ञासु सहज अवस्था को प्राप्त करता है :-

अंम्रित रसु सतिगुरु चुआइआ ।।

दसवै दुआरि प्रगटु होइ आइआ ।।

तह अनहद सबद बजहि धुनि बाणी

सहजे सहजि समाई हे ।। (अंग-1069)

नाम अभ्यास की आवश्यकता :-

मनुष्य जीवन के मनोरथ की पूर्ति के लिए, गुरमति के अनुसार एक ही साधन है, निरंकार का सिमरन

भाई परापति मानुख देहुरीआ ।।

गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ।।

गोबिंद मिलन के मिशन को पूरा करने के लिए :-

अवरि काज तेरै कितै न काम ।।

मिलु साध संगति भजु केवल नाम ।। (अंग-12)

केवल नाम सिमरन, नामके बिना छुटकारा नहीं । बाणी में संसार को बार बार 'भवजल' कहा गया है। भवजल से अर्थ! है 'संसार-सागर', और इसे पार करने के लिए नाम की साधना, गुरमति का सरल मार्ग है। संसार सागर का प्रसार बड़ा विस्तृत और गहरा है। इसे पार करने का मार्ग बड़ा जटिल है। आवागमन का भंवर है। कबीर जी, प्रभु से वर मांगते हुए कहते हैं:-

इकु दुखु राम राइ काटहु मेरा ।।

अगनि दहै अरु गरभ बसेरा ।। (अंग-329)

आवागमन से बचने, गर्भवास के नरकीय दु:ख से छुटकारा पाने और अग्नि में जलने से मुक्त होने के लिए नाम की आराधना अति जरुरी है। नाम सिमरन के बिना यह संसार-सागर पार नहीं किया जा सकता

भवजलु बिनु सबदै किउ तरीऐ ।।

नाम बिना जगु रोगि बिआपिआ दुबिधा डुबि डुबि मरीऐ ।। (अंग-1125)

सुख शांति के लिये, रसास्वादन के लिए मनुष्य मारा मारा फिरता है। शरीरिक इन्द्रियां, जो हमें सांसारिक पदार्थो से रस या सुख प्रदान करती है, वे क्षणमात्र की तृप्ति देती हैं। गुरु वचनानुसार, हमारे अंदर एक विशाल कुआँ, रसों से परिपूर्ण है, जिसका हमें ज्ञान नहीं। हम रस को पदार्थो में ढूंढ रहे है, बड़ी भ्रान्ति में हैं। अमृत रस की प्राप्ति हमें अपने अंदर से ही हो सकती है:-

काइआ अंदरि सभु किछु वसै खंड मंडल पाताला ।।

यथा

गुरमुखि होवै सु काइआ खोजै होर सभ भरमि भुलाई ।। (अंग-758)

शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए, नाम का अभ्यास साधन बनता है। बंदगी या भक्ति किए बिना, मानसिक शान्ति, इच्छा पूर्ति तथा आवागमन से मुक्ति नहीं हो सकती। अमृत पिए बिना अमर, स्थिर, एक रस की अवस्था (जो अपने स्रोत से मिलकर होगी) को प्राप्त ही नहीं किया जा सकता।

रसना हरि रसु पीजै अंतरु भीजै साच सबदि बीचारी ।।

अंतरि खूहटा अंम्रिति भरिआ सबदे काढि पीऐ पनिहारी ।। (अंग - 570)

कुऐ में से जल खींचने के लिए जिस प्रकार रस्सी और बालटी की ज़रुरत होती है, हैंड पंप से जल निकालने के लिए, पहली बार ऊपर से पानी डाला जाता है। उसी प्रकार अन्त:करण के अमृत कुण्ड से अमृत को शबद और सुरत द्वारा खीचा जाता है। नाम अभ्यास के बिना, अमृत की प्राप्ति नहीं हो सकती। वर्णात्मक गुरुमंत्र के जाप से, गुप्त नाम प्रकट होता है। गुरमति की शिक्षा यही है कि नाम जपने के समय शबद और सुरति की एकात्मिकता हो : -

गुरसिखी दा सिखणा सबदि सुरति सति संगति सिखै ।। (भाई गुरदास जी)

अत: प्रभु मिलाप के लिए, गुरबाणी पढ़ना, सुनना, नाम जाप करना, सुकृत करना, बाँट कर खाना, सुसंगति करना तथा शुभ कर्म करना आदि वे साधन हैं जिनके अपनाने से हमारी सुरति, शबद में लीन हो जाएगी। और कोई विचार करने वाली बात नहीं। आदेश है कि हे मनुष्य, तू अपने मन को राम के नाम में पिरो ले, तब ही तुझे शाश्वत सुख की प्राप्ति होगी : -

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु ।।

सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु ।। (अंग - 62)

नाम साधना

हर काम करने के लिए कोई युक्ति, कोई ढंग अवश्य अपनाया जाता है। युक्ति के बिना कोई मंजिल प्राप्त नहीं हो सकती। दुनियां के धर्मों में, परमात्मा को मिलने के कई प्रकार के साधनों का उल्लेख है। भारत में प्राचीनकाल से चले आ रहे साधनों में योग मत का विशेष स्थान है। योग मत के साधन अत्यन्त कठिन हैं। सर्व - प्रथम वे गृहस्थ मार्ग का त्याग करते हैं। परन्तु गुरमति प्रेम भक्ति पर आधारित है। गुरु साहिब द्वारा दर्शाया गया मार्ग है। गृहस्थी में रहते हुए ही सन्यासियों जैसा मार्ग है।

नानक सतगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति ।।

हसंदिआ खेलदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति ।।

यथा

सतिगुर की ऐसी वडिआई ।।

पुत्र कलत्र बिचे गति पाई ।।

\- - - - - - - - - - - - - - - - -

जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ ।। (अंग - 966)

श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का उपरोक्त वाक्य, स्पष्ट रुप से युक्ति को उजागर करता है कि ज्योति और युक्ति जो गुरमति में गुरु नानक देव जी से शुरु हुई, अगले गुरु अंगद देव जी ने भी उसी का प्रयोग किया। इसी प्रकार वह दस गुरुओं तक चलती रही। अब भी उसी को अपनाने का आदेश है।

योग साधना के आठ अंग माने गए हैं : -

1. यम । 2. नियम । 3. आसन ।

4. प्राणायाम । 5. प्रत्याहार । 6. धारणा ।

7. ध्यान और 8. समाधि ।

यम और नियम, सदाचार पक्ष के हैं।

आसन, शरीर से सम्बन्ध रखता है।

प्राणायाम, मन की वृत्तियों को वश में करता है।

प्रत्याहार, इन्द्रियों का चित्त में लीन होना है।

धारणा, किसी वस्तु या बिंदु पर ध्यान को टिकाना है।

ध्यान, सुरति के एक ही विचार या प्रवाह पर स्थिर होना है।

समाधि की अवस्था, ध्यान के अपने मूल रुप में खो जाने पर आती है।

इन सारी अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए योग हठपूर्वक ध्यान लगाता है और इन्हें प्राप्त करके समाधि की अवस्था प्राप्त करना चाहता है। न्यौली कर्म करता है, व्रत रखता है मौन धारण करता है और इन्द्रियों का दमन करने के कई साधन अपनाता है।

प्राणायाम द्वारा, श्वास को दशम द्वार तक ले जाकर रोकता है। ऋधि सिद्धि का स्वामि बनता है। सुषुमिना नाड़ी के रस को चखता है और रस मग्न होकर वही रहना चाहता है। सांसारिक कर्त्तव्य, परोपकार, सेवा सिमरन और सुसंगति से लापरवाह हो जाता है।

गुरमति में प्रेम - भक्ति की प्रधानता है। शब्द - सुरति की साधना है। हठपूर्वक नहीं बल्कि सहज भाव से, गुरु कृपा द्वारा, सत्यमार्गी होने का प्रयत्न है। सेवा सिमरन और सुसंगति, गुरमति का सरल मार्ग है। प्रभु मिलाप के मार्ग पर चलते हुए, जिन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है, सतिगुरु स्वयं सहायक बन कर, हाथ पकड़ कर मंजिल पर पहुँचा देते हैं, अगर जिज्ञासु गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुयायी हो।

जपुजी साहिब के प्रथम सोपान में उठाए गए प्रश्न, "**किव सचिआरा होईऐ**" का उत्तर, "**हुकम रजाई चलणा**", बताया है। उसे (प्रभु को) जो भाता है, उसे प्रसन्न मन से स्वीकार करना, गुरसिक्ख की साधना है। आदेश है "**एको नाम हुक्म है नानक सतिगुरु दीआ बुझाए जीउ।**"

सिक्ख के लिए एक ही आदेश है कि वह नाम जपे :-

फेरि के अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु ॥

मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु ॥

उत्तर है : "**अंमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥** "

नाम कैसे जपे इस प्रश्न का उत्तर महाराज ने जपुजी के 38वें सोपान में दिया है: -

जतु पाहारा धीरज सुनिआरु ॥

अहरणि मति वेदु हथिआरु ॥

भउ खला अगनि तप ताउ ॥

भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ॥

घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ॥

जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥

नानक नदरी नदरि निहाल ॥

जतु (इन्द्रिय - निग्रह), धीरज (सब्र, संतोष), मति (सूझ बूझ), वेद (ज्ञान), भउ (भय) तप (परिश्रम), भाउ (प्रेम), अंम्रित (नाम शब्द) ।

सद् आचरण और मानसिक तौर पर, उपरोक्त बिंदुओं पर ध्यान देते हुए, उपरोक्त दर्शाई गई टंकण शाला में 'शब्द' का निर्माण करना है। शब्द सुरति की साधना के लिए परिश्रम करना है। नाम का जाप और गुरबाणी का पाठ करना है। ध्यान रखना है कि नाम का जप और सिमरन सहज भाव से हो।

सहज : नाम सिमरन की सहज प्रक्रिया, प्रेम भावना से करने पर सुख शान्ति प्राप्त होती है। सुरति, वाहिगुरु के प्रेम की अनुभूति प्राप्त करती है: -

सहजे गाविआ थाइ पवै बिनु सहजै कथनी बादि ।।

सहजे ही भगति ऊपजै सहजि पिआरि बैरागि ।।

सहजै ही ते सुख साति होइ बिनु सहजै जीवणु बादि ।। (अंग - 68)

सहज से ही प्रेम उत्पन्न होता है। सहज से ही वैराग्य स्पंदित होता है। इस तरह सहज में प्रभु के गाए हुए गीत सफल होते हैं, स्वीकृत होते हैं और सहजतत: वाहिगुरु जी की प्राप्ति होती है। साधु संगति में सम्मिलित रुप से शबद - सुरित का मेल करने से आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है।

साध संगति संसार विच सबद सुरत लिव सहज बिलासी ।

इस प्रकार सहज भाव से, नाम की साधना करते हुए, सहज अवस्था प्राप्त होती है। सहज अवस्था क्या है ?गुरु साहिब का फरमान है, टंकणशाला में 'शब्द' को गढ़ने में जल्दी नहीं करनी चाहिए, धैर्य रखना चाहिए। शीघ्रता करने से बिलोने के लिए, बर्तन में डाला दूध, कहीं छलक कर बाहर ही न गिर जाए। कहीं नाम रुपी मक्खन बर्तन रुपी शरीर के हृदय में टिक ही न पाए। हठ से किया गया नाम का जप और तीव्र गति से किया गया सिमरन, कई तरह के मानसिक और शारीरिक रोगों को जन्म देता है। नाम का सिमरन दूध बिलोने के समान है, 'शब्द' को बिलोना है। 'शब्द' को सहजता से बिलोने पर नाम रस पैदा होता है, जिसे पीने पर जिज्ञासु की तृप्ति होती है : -

हरि का बिलोवना बिलोवहु मेरे भाई ।।

सहजि बिलावहु जैसे ततु न जाई ।। रहाउ।।

तनु करि मटुकी मन माहि बिलोई ।।

इसु मटकी महि सबदु संजोई ।।

हरि का बिलोवना मन का बीचारा ।।

गुर प्रसादि पावै अंम्रित धारा ।। (अंग - 478)

इस प्रकार रात - दिन आंठों पहर जिज्ञासु उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते, 'शब्द' को बिलोता है। प्रेम में डूबा रहता है। 'शब्द' का विचार, गुर - बाणी का भाव मन में बसाता रहता है। नाम का सिमरन करके अमृतपान करता है। उसे अपने अंतर से ही शांति का भंडार प्राप्त होता है। नाम को सर्वदा, दिन रात जपता है : -

ऊठत बैठत सोवत जागत इहु मनु तुझहि चितारै ।। (अंग - 820)

सहज सुभाइ होवै सो होइ ।।

करणैहारु पछाणै सोइ ।। (अंग - 282)

ब्रह्म मुहूर्त्त (अमृतवेला) की साधना : -

झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि ।। (अंग - 255)

नाम की साधना सर्वप्रथम ब्रह्म मुहूर्त्त से आरम्भ होती है। नाम जपने की सीढ़ी का प्रथम सोपान है, रात्रि समापन से एक पहर पूर्व जागना फिर स्नान करके अभ्यासी साधारण आसन लगाकर, मानसिक और शरीरिक रुप से सावधान होकर वाहिगुरु के सिमरन में लग जाता है। अमृतकाल से आरम्भ करना और उस समय को सम्भालना, अति आवश्यक है, यद्यपि बाद में चौबीस घंटे ही अमृत वेला बन जाता है।

अंम्रित वेले वतै का बीजिआ

भगत खाइ खरच रहे निखुटै नाही ॥

स्नान, स्वास्थ्य और ऋतु के अनुसार किया जा सकता है। शरीर रोगी होने की दशा में यह नहीं सोचना कि आज स्नान नहीं कर सके तो नाम का जाप भी नहीं करना। सिमरन की पहली अवस्थाओं में आरामदायक आसन में बैठना जरुरी है। बैठने का आसन साफ और स्वच्छ होना चाहिए। ये सारी वस्तुएं एकाग्रता पैदा करने में सहायक होती है।

पहले पाँच सात बार सतिगुरु जी का नाम उच्चारण करके फिर जाप आरंभ करें। जिन्हा द्वारा जाप करने को बैखरी जाप कहा जाता है। इससे 'शब्द' ध्यान में बस जायगा और शरीर सावधान रहेगा। पहली अवस्था में गुरमंत्र का जाप, रसना द्वारा बोल कर किया जाता है जिसे हमारे कान सुन सकें। यदि कान न सुने और मन न टिके तो मन को 'शब्द' की ध्वनि में लगाने के लिए मूलमंत्र को ऊँचे स्वर में उचारना चाहिए।

रसना नामु जपहु तब मथीऐ इन बिधि अंम्रितु पावहु ॥ (अंग - 728)

नाम का जाप लगातार करते रहें। यह जाप प्रेम भाव से करना है, शीघ्रता नहीं करनी। थोड़ी साधना के बाद घबराना नहीं कि कुछ प्राप्ति नहीं हो रही। सब्र और संतोष के मार्ग पर चलना है। विश्वास और भरोसा रखना है। भक्ति का कोई अंत नहीं। यह तो जीवन भर का काम है। जपुजी में गुरु जी कहते हैं : -

इक दू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥

लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥

एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस ॥ (अंग - 7)

गुरु जी कहते है मेरी एक जिह्वा से अगर लाख जिह्बा बन जाएं और वे लाख जिह्बाएं प्रत्येक पुन: लाख लाख बन जाएं, उन सारी जिह्वाओं से मैं लाख लाख बार प्रभु का नाम जप सकूँ। इस प्रकार पति - परमेश्वर के देश में प्रवेश मिलता है, दरबार में स्वीकृति मिलती है और वाहिगुरु के साथ एकात्मिकता बनती है। कहने का भाव है कि सिमरन की कोई सीमा नहीं। बेअंत और अटूट सिमरन की जरुरत हैं। कोई गिनती या सीमा नहीं।

कण्ठ में : कुछ समय पाकर गुरु जी की कृपा होगी जब 'शब्द' स्वत: कण्ठ से उच्चरित होने लगेगा। अक्षरों के जोड़ को शब्द कहते हैं। समूची बाणी शब्दों को जोड़ है और 'शब्द' रुप गुरु है। नाम अभ्यास के लिए 'वाहिगुरु' शब्द, गुरु साहिब का आदेश है। कंठ द्वारा उच्चारण के समय, जिह्वा हिल सकती है परन्तु ध्वनि नहीं होगी। कुछ समय इसी प्रकार बीतेगा। महीने और वर्ष भी लग सकते हैं। प्रश्न तो प्रभु कृपा का है। आगामी अवस्था की प्राप्ति के लिए घबराना नहीं चाहिए। न यह सोचना चाहिए कि बहुत समय हो गया, एक ही अवस्था में विचरण करते, अगली अवस्था नहीं आई। सब्र और संतोष से प्रभु कृपा की प्रतीक्षा करनी है, कृपा होगी तो 'शब्द', सुरति में बसेगा और सिमरन प्रारम्भ होगा।

कंठ में नाम जपने को, मध्यमा बाणी का जाप कहा जाता है। जिह्वा द्वारा बोलने के बिना ऐसा लगता है, जैसे कण्ठ बोल रहा है, उच्चारण कर रहा है। पूर्ण याद (स्मृति) आगे 'पसंती' में जाकर बनती है। कृपा दृष्टि हो जाए तो 'शब्द' स्मृति रुप हो अंतर में समा जाता है। वहां मीठी मीठी प्रभु की याद बस जाती है। कई बार लगता है 'वाहिगुरु' का उच्चारण हो रहा है। कई बार 'शब्द' सुरति और श्वास का पूर्ण मेल होता है। अजपा (बिना जपे) जाप चलता है, नशा सा छाया रहता है। यहाँ आकर कई बार नाम बाणी की एक अखंड ध्वनि सुनाई देती है। उसे भी नाम ही कहा जाता है। यहाँ अलौकिक अखंड कीर्तन के द्वारा 'वाहिगुरु' जी का यशोगान होता है।

सुरति : 'सुरति' याद है, हमारा चित है। चित (स्मृति) में 'शब्द' को बसा लेने पर मालिक के दर की समीपता प्राप्त होती है। 'शब्द' का सुरति में बार बार चिंतन करना है। असल में जीव ही सुरति है और सुरति ही जीव है, इस तरह जीव प्रभु की याद में पूर्ण रूप में जुड़ जाता है। यह हमारा निजत्व ही है जो किसी वस्तु के ध्यान में जुड़ता है। 'पसंती बाणी' में जीव विचरण करता है। इसी स्थिति में सिमरन की ऐसी अवस्था बनती है कि जिह्वा के बोल के बिना हृदय में नाम चिन्हित हो जाता है और सदा के लिए याद बनी रहती है: -

बिनु जिहवा जो जपै हिआइ ।।

कोई जावै कैसा नाउ ।। (अंग - 1256)

फिर वही जान सकता है कि 'नाम' में कैसा रस है। नाम क्या वस्तु है। 'शब्द' रुप वाहिगुरु जी के अंक में, जीव क्रीड़ा करता है। सतिगुरु जी निर्गुण रूप में स्वयं सहायक बन कर साथ रहते हैं। सतिगुरु के दो रुप हैं, सगुण और निर्गुण। सगुण स्वरुप श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी (वर्णात्मक शब्द रुप) हैं और दूसरा निगुर्ण रूप अद्वष्ट है जिसे ध्वन्यात्मक स्वरूप कहा जाता है। वह गुप्त (अदृश्य) नाम है जो सुरति द्वारा साधना करने पर हमें निरंकार के देश में पहुँचाता है और 'गुपत नाम परगाझा' गुप्त नाम प्रकट हो जाता है :

गुपता नामु वरतै विचि कलजुगि

घटि घटि हरि भरपूरि रहिआ ।।

नामु रतनु तिना हिरदै प्रगटिआ

जो गुर सरणाई भजि पइआ ।। (अंग - 1334)

इस अवस्था में अनुभव होता है कि बाणी, गुरु और शब्द एक रूप ही हैं : -

इका बाणी इकु गुरु इको सबदु वीचारि ।। (अंग - 646)

और यह शब्द रूप गुरु सदैव आदि अंत तक रहता है।

आदि अंत एकै अवतारा ।। सोई गुरु समजियो हमारा ।।

यहाँ समझ आती है कि हमारा वास्तविक गुरु शब्द ही है। जो शब्द के अभ्यास की साधना करता है, वह हमारी सुरति है जिसे चेला कहा है और शब्द गुरु है : -

सबदु गुरु सुरति धुनि चेला ।। (अंग - 943)

ध्वनि (धुनि) : श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी का कथन है : -

प्रिथमै ओअंकार तिन कहा ।।

सो धुन पूर जगत मो रहा ।।

ता ते जगत भयो बिसथारा ।।

पुरख प्रक्रिती जब दुहूं बीचारा ।।

जगत की रचना के समय जो ध्वनि पैदा हुई, वह सर्वव्यापक है। अकाल पुरख जी ने सर्वप्रथम ੧ੳ ओंकार शब्द का उच्चारण किया । उस शब्द से एक ध्वनि पैदा हुई और उस ध्वनि से जी जगत का प्रसार हुआ।

धावतु थंम्हिआ सतिगुरि मिलिऐ दसवा दुआरु पाइआ ।।

तिथै अंम्रित भोजनु सहज धुनि उपजै

जितु सबदि जगतु थंम्हि रहाइआ ।। (अंग - 440)

पुरख महि नारि नारि महि पुरखा

बूझहु ब्रहम गिआनी ।।

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ

गुरमुखि अकथ कहानी ।। (अंग - 879)

जो वर्णात्मक नाम जपते हैं, जपते जपते, सिमरन करते करते उनके अंदर यह ध्वनि प्रकट होती है, एक दम गूंजती है। जिज्ञासु को ध्यान जोड़ने का सही टिकाना मिल जाता है। सतिगुरु कृपा करके हमारे मस्तक में यह ध्वनि जागृत करते हैं : -

खटु मटु देही मनु बैरागी ।।

सुरति सबदु धुनि अंतरि जागी ।। (अंग - 903)

सतिगुर सेवे ता सहज धुनि उपजै

गति मति तद ही पाए ।।

हरि का नामु सचा मन वसिआ नामे नामि समाए ।। (अंग - 604)

अन्तरात्मा में जो ध्वनि अन्त:कर्ण द्वारा ही सुनी जाती है, सतिगुरु जी अपने शिष्य पर कृपा दृष्टि करके, उसके मस्तक में अंकित कर देते हैं जो सदैव गूंजती और सुनाई देती रहती है : -

पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तउ मिटिआ न जाई ।।

तेरे दुआरै धुनि सहज की माथै मेरे दगाई ।। (अंग - 969)

शब्द की ध्वनि सुनाई देने पर प्रभु के दर की कुछ अनुभूति होती है। हम बाहय रुप में संगीत स्वरों द्वारा जो शब्द कीर्तन करते हैं उसका अभिप्राय: अन्तरात्मा की अति सूक्ष्म और अनहत ध्वनि को जागृत और प्रकट करना ही है : -

अनहद धुनि वाजहि नित वाजे गाई सतिगुर बाणी ।।

नानक दाति करी प्रभि दातै जोती जोति समाणी ।। (अंग - 442)

जी हाँ! कीर्तन करने, शब्द गायन करने और शब्द के सिमरन से यह ध्वनि जागृत होती है: -

साचै सबदि सहज धुनि उपजै मनि साचै लिव लाई ।।

अगम अगोचरु नामु निरंजन गुरमुखि मंनि वसाई ।। (अंग - 1234)

यह ध्वनि कैसी है ?इसकी क्या पहचान है ?वैसे तो इसका अनुभव सुरति में इसके प्रकट होने पर ही होता है, परन्तु बाहरी तौर पर समझने के लिए माल लो कि तुम किसी मंदिर या स्कूल की घंटी की आवाज सुनते हो। घंटी बजाने वाला उस पर दो चार चोटें लकड़ी के हथौड़े से मारेगा। उन चोटों की टन-टन की आवाज तुम गिन कर बता सकते हों कि कितनी चोटें मारी गाई हैं। परन्तु उस टन टन के अतिरिक्त, घंटी से एक स्वर (ध्वनि) लगातार निकलना शुरु हो जाती है, जो कुछ देर बाद तक भी सुनाई देती रहती है। बस यही स्वर ध्वनि है। गुरबाणी का फरमान है : -

कासी ते धुनि ऊपजै धुनि कासी जाई ।।

कासी फूटी पंडिता धुनि कहां समाई ।। (अंग - 857)

यथा

सची बाणी सचु धुनि सचु सबदु वीचारा ।।

अनदिनु सचु सलाहणा धनु धनु वडभाग हमारा ।। (अंग - 564)

सो अन्तरामत्मा में शब्द सुरत लिवलीन होकर, सतिगुरु से ध्वनि उपजाने का पात्र बनना है, ੧ੳ की ध्वनि प्राप्त करनी है। जितना अधिक से अधिक गुरबाणी पाठ, गुरबाणी कीर्तन या सुरति में नाम सिमरन किया जाएगा, ध्वनात्मक मंडल में उतनी ही जल्दी पहुँचा जा सकता है।

यह ध्वनि दिन रात ब्रह्मण्ड में परिपूरित हो रही है : -

कथा कीरतनु आनंद मंगल धुनि

पूरि रही दिनसु अरु राति ।। (अंग - 820)

लिवलीनता (समाधि) : -

सुरत में शब्द और शब्द में सुरत (ध्यान) को इस तरह से लीन करना है, जैसे जल और मीन का मिलन है। शब्द सुरत के संयोग के लिए कोई केन्द्रीय बिंदु समझना पड़ेगा। यूँ तो आँखों की भाँवों के मध्य स्थान को ध्यान लगाने के योग्य समझा जाता है

परन्तु हम शरीर के किसी भी अंग पर किसी भी स्थान पर ध्यान को टिका सकते हैं। जैसे, हाथ के अँगूठे या अंगुली पर, कलाई या बाजू के किसी भी स्थान, हाथ, पैर, टाँग, बाजू, नाभी, दिल, दिमाग, कहीं भी बिंदु साधा जा सकता है। कभी कभी शब्द स्वयं ही बिंदु चुन लेता है। प्रश्न तो 'शब्द' में मन की एकाग्रता पैदा करने का है।

प्रत्येक शारीरिक अंग का कोई न कोई निश्चित स्थान है। जैसे, मल का, मूत्र का, आँख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि का निश्चित स्थान है। इसी तरह मन के टिकाने का उचित, स्थान हमारा मस्तक ही है। परन्तु मन का टिकाव कभी भी हो सकाता है।

जब हम किसी समस्या पर सोच विचार करते हैं, गहन अध्ययन करते हैं तो हम अपने मस्तक के मध्य ही अधिक जोर देते हैं। कई बार माथे पर हाथ रख कर चिन्तन करते हैं। सुरत का ध्यान समस्या में लगा कर उसका हल ढूँढने की कोशिश करते है। यदि शरीर का कोई और अंग ध्यान के लिए चुने तो वह अधिक देर नहीं टिकता आखिर सुरति दौड़ कर मस्तक की ओर ही आती है।

मस्तक में इस स्थान को त्रिकुटी भी कहा जाता है। 'त्रिकुटी' के कई अर्थ लिए जाते हैं। योगी इड़ा पिंगला और सुषुमना तीन नाड़ियों के संयोग को त्रिकुटी मानते हैं। ज्ञान के विचार के लिए रजो, तमो, सतो तीन गुणों के सुमेल को त्रिकुटी मानते हैं। रजो, तमो, सतो से ऊपर उठ कर ही चौथा पद पाया जाता है। इसी तरह मस्तक की नाड़ियों को पार करके ही दशम द्वार की ओर बढ़ते हैं। भटकते मन को नियंत्रित करने में यह स्थान सहायक होता है। यहां मन स्वत: ही टिक जाता है। किसी योग या हठ योग की साधना नहीं करनी पड़ती। चिन्तन करते समय सत्य विचार करते समय मन स्वभावत: इस स्थान की ओर जाता है। बल्कि शब्द का सुरत में अभ्यास करते समय रचयमेव इस स्थान पर टिक जाता है। भाई गुरदास जी का कवित है : -

सबद सुरति लिव लीन जल मीन

गति सुखमना संगम होइ उलटि पवन कै ।।

बिसम बिस्वास बिखै अन मै अभिआस

रस प्रेम मधु अपिउं पीवै गुहज गवन कै ।।

सबद के अनहद सुरति कै उनमनी

प्रेम के निझर धार सहज खन कै ।।

त्रिकुटी उलंघि सुख सागर संजोग भोग,

दसम सथल निहकेवल भवन कै ।। (कविता - 291)

प्रभु का गुणगान कैसे करना है ?उपरोक्त कथन के अनुसार, मछली जैसी तड़प हो : -

गुन गोबिंद गाइओ नही जनमु अकारथ कीनु ।।

कहु नानक हरि भजु मना जिह बिधि जल कउ मीनु ।। (अंग - 1426)

और फिर : **त्रिकुटी छूटै चउथे पद महि जाए समावै ।।**

यह ध्यान और ध्वनि की एकाग्रता, निमग्नता केवल अंतरात्मा में ही हो सकती है। यह अवस्था काफी समय के अभ्यास के बाद आती है। शब्द जब जिह्वा के कण्ठ और कण्ठ से सुरति में बस जाता है और बिना जिह्वा प्रयोग के अजपा जाप होने लगता है। सिमरन की अवस्था जब शिखर पर पहुँच जाए तो एक क्षण, एकचित् सिमरन करने का क्षण आता है। तब नाम नामी और नामलेवा (साधक) का भेदभाव मिट जाता है। मेरा तेरा मिट जाए, तू ही तू नजर आए, ऐसी अवस्था लिवलीनता कहलाती है।

शरीर के किसी अंग को केन्द्र बिन्दु बनाने से भाव मन की एकाग्रता से है, नहीं तो मन भटकता रहेगा। नाम रस और नाम रंग प्राप्त नहीं हो सकेगा। केन्द्रीय बिन्दु पर शब्द की ध्वनि तुम्हें घड़ी की टिक टिक की तरह सुनाई पड़ेगी। यह स्थिति अजपा जाप की अवस्था के परिपक्व होने की निशानी है। शनै: शनै: बाह्य बिन्दू छूटते जाएंगे और सुरति ੴ अंकार की ध्वनि का श्रवण करेगी। कृपा दृष्टि हो जाएगी। अनहद बाणी का रस प्राप्त होगा, जिसका पान करके मन मतवाला हो जाएगा। चौथे पद की प्राप्ति

के लिए, गुरु शब्द में एकाग्र होने से दशम द्वार खुल जाता है। पारब्रह्म परमेश्वर में लीन होने का अनुभव होता है। उसके सारे गुणों का अनुभव होता है। सदैव उल्लास और आनंद की अवस्था बनी रहती है और हम ੴ अंकार की धुन (जो हमारा मूल) है में समा जाते हैं।

श्री गुरु गोंबिद सिंघ जी नाम साधना की युक्ति, निम्न पद में व्यक्त करते है: -

रे मन इह बिधि जोग कमाउ ।।

सिंङी साच अकपट कंठला धिआन बिभूत चड़ाओ ।।

तंती गहु आतम बीस कर की भिछा नाम अधारे ।।

बाजे परम तार ततु हरि को उपजै राग रसारं ।।

उघटै तान तरंग रंग अति गिआन गीत बंधानं ।।

चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि बयोम बिवामं ।।

आतम उपदेस भेस संजम को जापसु अजपा जापै ।।

सदा रहे कंचन सी काया काल न कबहूं बिआपै ।।

गुरमति के योग का ढंग समझाते हुए गुरु जी कहते हैं कि हे मन! सत्य को शृंगी (वाद्य) बनाओ, भाव सत्य को धारण करो। कण्ठ, जिससे सिंगी बजानी है वह अकपट का हो अर्थात् कपट रहित हो अथवा किसी से धोखा फरेब न करो। मन को निर्मल रखो। नाम से ध्यान जोड़ना, शरीर पर विभूति रमाना समझो। आत्मिक निवास ही योगियों पर पात्र समझो और उसमें नाम रुपी भिक्षा इकत्र करो।

इस तरह जब अन्तरात्मा में अभ्यास करेंगे तो बड़े रसीले वाद्य बजेंगे। मीठे मीठे ज्ञान के गीत सुनाई देंगे। नाम रूपी अमृत झरेगा और नाम रस पीकर मन तृप्त होता। शरीर प्रफुल्लित रहेगा। फिर जब अजपा जाप चलेगा, भाव, लगातार अभ्यास चलेगा, बिना बजाए सारंगी बजेगी। अर्थात् किसी प्रयत्न के बिना स्वयंमेव सिमरन जारी है: -

वाजे बाझहु सिंङी वाजै तउ निरभउ पदु पाईऐ ।। (अंग - 730)

संयम रुपी वेश धारण करके, अजपा जाप में विचरण करते हुए हम काल से मुक्त हो जाएंगे।

हम घरि साजन आए ।। साचै मेलि मिलाए ।।

सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ ।।

साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ ।।

अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए ।।

पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए ।। (अंग - 764)

हमारे साजन फिर शैय्या पर आते हैं। जिसे हम जन्म जन्म से याद कर रहे थे, जिसके दर्शन के लिए आतुर हो रहे थे, वह मिल गया और खुशी के वाद्य बजने लगे :

मेरी सेजड़ीऐ आडंबरु बणिआ ।।

मनि अनदु भइआ प्रभु आवत सुणिआ ।।

प्रभ मिले सुआमी सुखह गामी चाव मंगल रस भरे ।। (अंग - 459)

नाम - साधना के विषय में संत अतर सिंघ जी के विचार : -

संत बाबा अतर सिंघ जी अपनी 'जीवन कथा' में, नाम - साधना के विषय में इस प्रकार लिखते हैं: -

नाम सिमरन यदि पूरी युक्ति और निश्चय से किया जाए तो सर्व प्रथम अन्त:करण की मैल दूर होती है। फिर प्रेम का रंग चढ़ता शुरु होता है। समय पा कर प्रेम का नाश इतना बढ़ जाता है फिर शरीर (नाम - रूप) का अभाव हो जाता है और हर रंग में

प्रिय ही नज़र आने लगता है। नाम जाप करने के स्पष्टतत: निम्न तरीके हैं: –

1. होंठ और जीभ, दोनों हिलें।
2. फिर केवल जीभ का छोर (अग्र भाग) तालू का स्पर्श करे और वाहिगुरु वाहिगुरु उच्चारण करे।
3. तत्पश्चात् श्वास अन्दर खींचते 'वाहि' और छोड़ते 'गुरु' का उच्चारण किया जाए।
4. इस तरह फिर शब्द-सुरति (ध्वनि और ध्यान) एक हो जाने से, यह दशा उपरोक्त तीन दशाओं के परिपक्व होने पर अटूट अभ्यास के बाद, स्वत: ही आ जाती है और प्राणी लोम प्रतिलोम सहज ही नाम जपने लगता है। फिर यह दशा आ जाती है कि : –

उरि धारै जो अंतरि नामु ॥

सरब मै पेखै भगवानु ॥

निमख निमख ठाकुर नमसकारै ॥

नानक ओहु अपरसु सगल निसतारै ॥ (अंग – 274)

यहाँ एक बात बतानी बड़ी आवश्यक है कि पहले दो चार वर्ष जिज्ञासु अवश्य ही रसना द्वारा नाम जपे। फिर श्वास के सोपान का आरम्भ करे। अमृतकाल के एकांत में और सोने से पूर्व, पहले श्वास द्वारा नाम जपे। फिर चलते फिरते रसना के साथ और फिर हर समय श्वास द्वारा नाम जपता रहे।

कई जिज्ञासु पर्वू जन्म के अभ्यासी होने के कारण पहली बार ही श्वास गिरास की सीढ़ी चढ़ सकते हैं और कई इसी जन्म में अभ्यासी बनते हैं। उनके लिए प्रथम सोपान से ही आरम्भ करना उचित है। जब जिज्ञासु अभ्यास करता है तो तीन प्रकार के विघ्न उसके सामने आते हैं : –

1. नींद आने लगती है।
2. पालथी मार कर बैठने से शरीर थक जाता है।
3. मन इधर उधर दौड़ने लगता है। कई ऐसे संकल्प विकल्प आ प्रकट होते हैं जो कभी चित् में नहीं होते ।

नींद का पहला इलाज तो ठण्डे जल से स्नान है। यदि फिर भी छुटकारा न हो तो आंखों में ठण्डे जल की छीटें मारें। यदि अब भी सफलता न मिले तो खड़े हो जाएं और कुछ समय चलते फिरते अभ्यास करें, फिर बैठ जाएं।

दूसरे विघ्न का भी यही इलाज है। हमारा शरीर घोड़ा है। हमने इसे सर चढ़ा रखा है। यह दु:खी करे और ठीक न चले तो मजबूती से उसे कहें कि तुमने बहुत समय हम पर सवारी कर ली हैं। अब तैयार हो जा। अब हमने तेरे पर सवारी करनी है। यदि हम हिम्मत करेंगे तो शीघ्र ही यह बिना लगाम का टट्टू वश में आ जाएगा।

तीसरा विघ्न बहुत दूर तक साथ जाता है। शुरु में बहुत भयानक रूप दिखवाता है फिर धीरे धीरे सूक्ष्म हो जाता है। इसका प्रारंभिक इलाज, सतिगुरु नानक, गुरु गोबिंद सिंघ जी को हृदय में बसा कर विनती करना है कि हे सतिगुरु जी! अच्छे हैं, बूरे हैं, मगर तरे हैं। कृपा करें, हमारा मन अपने चरणों में जोड़ लें इसकी दूसरी युक्ति : –

मन ही नालि झगड़ा मन ही नाल सथ

मन ही मंझि समाइ ॥ (अंग – 87)

धन्न जीओ तिह को जग मै मुख ते

हरि चित में जुधु बिचारे ॥

देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़ै भव सागर तारै ॥

तीसरा इलाज, गुरु तेग बहादुर जी की वैराग्यमयी बाणी नियम से पढ़ना और सतिगुर के उपकरों को स्मरण करके अपनी अकृतघ्नता पर रोना है। वैसे वैराग्य का एक एक आंसू जन्म जन्म की मलीनता धो लेता है।

जब मन की अवस्था कुछ सूक्ष्म हो जाती है तो इसे नियंत्रित करना और भी कठिन हो जाता है। इसका इलाज है, गुरमुखों की संगति, आत्म चिन्तन, और साध संगत की आज्ञा में, अहंकार रहित मन से निष्काम सेवा। इस तरह परिपक्व होकर, बिना थके, सतिगुरु की शरण (आश्रय) लेकर गुरु का सिक्ख प्रयत्नशील रहे तो एक दिन यह मन रूपी पहलवान को, जिसे इसने स्वयं ही विषय विकार भोग मान अपमान की खुराक देकर पाल रखा है, परास्त कर देता है और हमेशा के लिए आजाद हो जाता है।

मनि जीतै जगु जीतु ॥ (जपु जी)

निहते पंजि जुआन मै गुर थापी दिती कंडि जीउ ॥ (अंग-74)

जो प्रेमी धर्म पूर्वक जीविका कमाता है, बाँट कर खाता है, नाम जपता है और साथ ही निष्काम सेवा करता है, उसका मन प्रफुल्लित रहता है और उसमें प्रभु मिलन की तीव्र इच्छा पैदा हो जाती है।

भाई वीर सिंघ जी : भाई साहिब अपनी पुस्तक, 'श्री गुरु नानक चमत्कार' में पृष्ठ 296 (ऐडीशन दसवीं) पर नाम सिमरन के बारे में इस प्रकार लिखते हैं :-

यदि शाश्वत सुख की इच्छा हो तो व्यक्ति माया से ऊपर उठने और नामी में जाने की इच्छा करता है। जो ऐसी इच्छा करे वह नामी के गुण स्वरूप और लक्षणों को समझता है। समझता सुनता इसलिए है कि उसे देख तो सकता नहीं। क्योंकि वह अगोचर है अत: एक ख्याल बनाता है, नामी के स्वरूप और गुणों का। अपने अंदर एक लक्ष्य बनाता है नामी का, और प्रयोजन बनाता है नाम में ध्यान लगाने का। सो तुम्हारी पहली भूल यह है कि तुम नामी का ख्याल बांधे बिना और ध्यान को दृष्टिमान किए बिना, दृष्टमान पदार्थो से उठ कर, नामी में लगा लेने का प्रयोजन धारण किए बिना नाम रटना शुरु कर देते हो। जब नाम के अर्थ में, भावना ही नहीं धारण की, तो बताओ किसका नाम जपते हो?

पहले परमेश्वर में धारण स्थापित करो, फिर नाम जपो यह जान कर कि यह नाम उस मालिक पालन कर्त्ता का है। जपते हुए इस कोशिश में रहें कि उस सर्वव्यापी की उपस्थिति का अनुभव और विश्वास करके नाम जप रहे हैं।

यहाँ भाई साहिब जी यह संकेत करते है कि मन में वाहिगुरु जी के गुण धारण करके नाम जपना चाहिए। वाहिगुरु जी के सारे गुण, मूल मंत्र में दर्शाए गए है। समूची बाणी अकाल पुरख के गुणों से परिपूर्ण है। इन्हें समझना और उनका ध्यान करना चाहिए। 'गुरमुख जीवन' शीर्षक पुस्तक में भाई वीर सिंघ जी एक स्थान पर लिखते है- ''अत: ध्यान यह रखना चाहिए कि जिह्बा से नाम न भूले फिर अपने आप यह नाम का अरोग सिमरन, तुम्हारी खुद गर्दन सीधी करेगा, जिह्बा से नीचे हृदय में उतरेगा, सुरति में धंसेगा। प्राणों में जब बस गया, फिर प्रयत्न की आवश्यकता नहीं रहती, **''ऊठत बैठत सोवत नाम''**, स्वयंमेव जारी हो जाता है।

आगे कहते हैं : ''पता चला कि हमारा नाम सिमरन उस व्यापक और हृदय में बस रहे व्यापक नाम से जोड़ देगा। गोया, व्यापक नाम और स्मृत नाम, दोनों का संगम होता है और वह संगम भी 'नाम' ही कहा जाता है। नाम और नामी की अभेदता है। अर्थात् नाम के माध्यम से प्रेमी, नामी वाहिगुरु को प्राप्त हो जाता है।''

मन

अब प्रश्न उठता है कि मन को कैसे नियंत्रित किया जाए?मन को नियंत्रण में किए बगैर तीन गुणों वाली माया (त्रिकुटी) से छुटकारा असंभव है। श्री गुरु अर्जन देव जी भटकते मन को स्थिर करने की युक्ति बताते हैं। इसके लिए वे छत बनाने में प्रयोग होने वाले स्तम्भ का उदाहरण देते हैं। प्राचीन काल में लकड़ी के छत के नीचे लड़की के ही स्तम्भ खड़े किए जाते थे। आजकल लैंटर की पक्की छत बनाने से पहले कच्ची छत खड़ी करनी पड़ती है जिसके नीचे लकड़ी के लट्ठे, स्तम्भ के रुप में खड़े किए जाते हैं। गुरु जी कहते है: -

जिउ मंदर कउ थामै थंमनु ।।

तिउ गुर का स्बदु मनहि असथंमनु ।। (अंग - 282)

गुरु के शब्द का सतम्भ ही मन को स्थिर कर सकता है : -

सतिगुरि मिलिऐ धावंतु थंम्हिआ निज घरि वसिआ आए ।।

नामु विहाझे नामु लए नामि रहे समाए ।।

धावतु थंम्हिआ सतिगुर मिलिऐ दसवा दुआरु पाइआ ।।

तिथै अंम्रित भोजनु सहज धुनि उपजै

जितु सबदि जगतु थम्हि रहाइआ ।।

तह अनेक वाजे सदा अनदु है सचे रहिआ समाए ।।

इउ कहै नानकु सतिगुरि मिलिऐ धावतु थंम्हिआ

निज घरि वसिआ आए ।। (आ. म. 3 छंत - 440)

सतिगुर जी की शरण ग्रहण करने से इस मन को वश में किया जा सकता है। नाम में अनुरक्त मन, जब नाम रस का पान करेगा तब स्वयमेव ही स्थिर होकर दशम द्वार में बस जाएगा। जहाँ प्रति दिन आठों पहर चौबीस घंटे अमृत भोजन वितरित होता है। इसे वश में करने का सरल ढंग तो यह है कि इसे (मन को) सतिगुर के पास बेच दो : -

मन बेचै सतिगुर के पासि ।।

तिसु सेवक के कारज रासि ।। (अंग - 286)

और इस तरह : -

तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ ।। (अंग - 918)

बिक जाएं गुरु के पास, मन की और लोकाचार की परवाह न करे : -

सुनि सखीए प्रभ मिलण नीसानी ।।

मनु तनु अरपि तजि लाज लोकानी ।। (अंग - 737)

अपने मनतव्य को प्राप्त करने के लिए मन के साथ संघर्ष तथा युद्ध करना पड़ेगा : -

खालसा सोई जो मन सिउ लूझै ।।

मन के साथ संघर्ष करने के अतिरिक्त, इसे प्यार से भी समझाना पड़ेगा। इसे कहे - हे मन! इस नश्वर संसार से तूने क्या लेना है?

चार दिन की चांदनी को तू शाश्वत समझ रहा है। क्षण भंगुर रसों में तू लिप्त हो रहा है। माया की तृष्णा, कभी नहीं मिटती। तुम सदैव अतृप्त ही रहते हो। हज़ारों कमाते हो फिर लाखों के लिए दौड़ते हो। लाखों कमा कर, फिर करोड़ों के पीछे भागते हो। तुम्हारी तृष्णा का कोई अंत नही। सदैव चिंता में डूबे रहते हो। आठों पहर लोभ लालच के संकल्पों में उलझे रहते हो। किसी एक निरर्थक विचार को व्यर्थ ही बार बार दोहरा रहे हो, जो जल को बिलोने जैसा है, जिससे कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। देख, मेरे मन! मेरा जीवन यों ही बर्बाद न कर। मुझे अपने स्वरुप से प्रेम करने दे। आवश्यकता अनुसार मैं तुम्हारी भी तृष्णा पूर्ण करता रहूँगा। क्योंकि मेरे गुरु की आज्ञा है कि तेरी तृष्णा को सीमा में रख कर पूर्ण करुं और मन (चित्) को नाम में जोड़ कर रखूं। भाई मेरे, तृष्णा, तृष्णा में से ही पैदा होती रहती है, इसलिए इसका कोई अंत नहीं। यह कभी पूर्ण नहीं होती। यह तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक तुम संतोष को अपने अंदर बसा नहीं लेते और नाम का रस नहीं चख लेते।

इस तरह भटकते मन को समझाने से, मन में नाम का निवास हो जाएगा और संकल्पों का क्रम टूट जाएगा।

ध्यान

नाम साधना के लिए ध्यान बहुत महत्वपूर्ण है। अपनी सुरति के ध्यान को नाम में जोड़ने से वाहिगुरु के दर की प्राप्ति हो सकती है। प्रभु के दरबार में पहुँचने का गौरव तभी प्राप्त हो सकता है यदि हम पूरे ध्यान से अपनी सुरति को प्रभु के नाम में लीन कर देंगे।

मन मेरे हरि हरि सेवि निधानु ॥

गुर किरपा ते हरि धनु पाइऐ

अनदिनु लागै सहजि धिआनु ॥ (अंग - 1277)

मानव मन सदैव किसी न किसी वस्तु का ध्यान करता रहता है। इस के अंदर चौबीस घंटे अच्छे बुरे विचार चलते रहते हैं। उन विचारों को हम रोक नहीं सकते, परन्तु विचार सार्थक हैं या निरर्थक, इस बात का विचार करना जरुरी है। हरेक हृदय किसी न किसी विचार में डूबा रहता है। किसी की भलाई और किसी की बुराई सोचता है या कोई चिंता उसे सता रही होती है।

नाम बिना किआ गिआन धिआनु ॥

गुरमुखि पावहि दरगहि मानु ॥ (म - 1, 905)

अत: निरर्थक विचारों से हटा कर ध्यान में सार्थक संकल्पों और गुरबाणी विचार को स्थान देना है। अध्यात्मकवादी सारे विचारों को समेट कर वाहिगुरु शब्द में अपना ध्यान जोड़ता है। नाम में ध्यान जोड़ने के अतिरिक्त सभी ज्ञान, ध्यान निरर्थक है।

ध्यान किसी वस्तु में मन जोड़ने और उसमें मग्न होने को कहते हैं। आम शिकायत है कि भजन बंदगी में मन नहीं लगता। यह काम बड़ा कठिन है और सरल भी। यदि कोई निरर्थक वस्तु बार - बार ध्यान में आती है। तो उसे हटाकर, उसके स्थान पर गुरबाणी और गुरमंत्र को मन में बसाना है। काम इतना ही है। यह सरल हो सकता है यदि हम गुरबाणी का रटन करें।

कठिन इसलिए है कि हम सांसारिक पदार्थो के मोह में फंसे है। तन मन से इस मायावादी खेल में ही व्यस्त है। माया के मीठे मोह ने हमें भ्रमित कर रखा है। हम सदैव अपने परिवार, सम्बन्धी तथा रिश्तेदारों के साथ, व्यर्थ की बातों तथा व्यर्थ कार्यो में लगे रहते हैं। अपनी वास्तविकता को भुला कर, माया के प्रभाव में मायावादी बन बैठे हैं। कारोबार की सफलता, उसका विस्तार और उससे धन कमाना ही हमारा धर्म बन चुका है। हमारा ज्ञान, दृश्यमान जगत से ऊपर नहीं उठा। बस यही समझते हैं कि इस दृश्यमान जगत से आगे पीछे कुछ नहीं। अत: रात दिन धन कमाने के ध्यान में लगे रहते हैं। गुरबाणी का फरमान है: -

गिआनु धिआनु गुर सबदु है मीठा ॥

गुर किरपा ते किनै विरलै चखि डीठा ॥ (अंग - 162)

इस तरह ज्ञान और ध्यान, दोनों ही गुरु के 'शब्द' की साधना के फल है। इसमें आनन्द है, रस है। चख कर तो देखो। जब ध्यान, वाहिगुरु में जुड़ गया तो जिज्ञासु गुरमुख बन जाता है और सदैव अग्रगामी और उल्लसित जीवन का स्वामी बनता है। गुरु कृपा से ध्यान में ੴ की ध्वनि उत्पन्न होने लगती है। जब गुरु की कृपा दृष्टि हो जाती है तो अंतर में सहज ध्वनि सुनाई देने लगती है। यह मनमोहक और रसीली ध्वनि जो सर्वव्यापक है, चौबीस घंटे कायम रहती है : -

गुरमुखि धिआन सहज धुनि उपजै

सचि नामि चितु लाइआ ॥

गुरमुखि अनदिनु रहे रंगि राता

हरि का नामु मनि भाइआ ॥ (अंग - 512)

मन को बाहरी मायावादी पदार्थो से हटा कर, अन्तरात्मा में गुरु शब्द के ध्यान में जोड़ना है। मन को बाहर भटकने से रोक कर, अन्तरात्मा से सम्बन्ध जोड़ना है। ध्यान को 'शब्द' में जोड़ने से, 'मैं' और 'वह' का भेद मिट जाता है। ध्याता और ध्येय एक

रुप हो जाते है। 'वाहिगुरु' के नाम में ध्यान लगाया जाता है और ध्यान करने वाला जिज्ञासु होता है। जिज्ञासु जिस वस्तु (ध्येय) का ध्यान करता है, वह उसी का रूप हो जाता है। इस तरह जिज्ञासु की जीवात्मा, धीरे धीरे परमात्मा से एकात्मकता प्राप्त कर लेती है। यही मंजिल है, गुरसिक्ख के जीवन की तथा मानव जीवन की।

ध्यान करनेकी उपयुक्त युक्ति नामदेव जी के निम्न पद से भली भांति समझ में आ जाती है : -

आनीले कागदु काटीले गूडी आकास मधे भरमीअले ॥

पंच जना सिउ बात बतऊआ चीतु सु डोरी राखीअले ॥

मनु राम नामा बेधीअले ॥

जैसे कनिक कला चितु मांडीअले ॥1॥ (अंग - 972)

इस पद में भक्त जी, अपने साथ भक्त तिरलोचन जी को संबोधित करते हुए कहते हैं कि जैसे एक बालक कागज़ की पतंग को आसमान में चढ़ाता है, डोरी खींचता है, उसका ध्यान पतंग में जमा रहता है, पतंग गिर न जाए या कोई उसे काट न दे। इस तरह अपना पूरा ध्यान पतंग में बिंधा रहने पर भी वह अपने साथी बालकों से बातचीत करता रहता है। नामदेव जी कहते हैं कि इस प्रकार से मन को राम के नाम में बीधना चाहिए।

आनीले कुंभु भराईले ऊदक राजकुआरि पुंरदरीए ॥

हसत बिनोद बीचार करती है चीतु सु गागरि राखीअले ॥

दूसरा उदाहरण सिर पर पानी ढोने वाली नारी का देते हैं, जो पानी से भरा घड़ा अपने सिर पर टिका कर चलती है। इनका पूरा ध्यान, पानी से भरे घड़े में होता है चाहे वे साथ चलती सखियों से बातचीत और हंसी मजाक भी करती रहती है। इसी प्रकार अपने स्थान से दूर, चरागाहों में चरती गौएं भी घास चरती हुई अपने बछड़ों को याद रखती हैं। उनका ध्यान, पीछे बछड़ों में ही रहता है: -

मंदरु एकु दुआर दस जाके गऊ चरावन छाडीअले ॥

पांच कोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥

हमारे शरीर के दस द्वार हैं, जिनमें से नौ खुले हैं, दसवां गुप्त है, अत: नौ द्वारों में विचरण करते हुए, ध्यान को दशम द्वार में टिकना (स्थित करना) है। भक्त जी आगे और समझाते हुए कहते हैं कि माँ अपने बच्चे को पालने में लिटा देती है। घर में अंदर बाहर काम करती हुई घूमती रहती है परन्तु उसका पूरा ध्यान, पालने में लेटे अपने बच्चे पर रहता है : -

कहत नामदेउ सुनहु तिलोचन बालकु पालन पउढीअले ॥

अंतरि बाहरि काज बिरुधी चीतु सु बारिक राखीअले ॥ (अंग - 972)

ये ढंग हैं, ध्यान लगाने के ।

कई जिज्ञासुओं का प्रश्न होता है कि अदृश्य वाहिगुरु जी से ध्यान कैसे जोड़ें क्योंकि स्वरुप का पता नहीं। सुविधा के लिए वे गुरु साहिबान या किसी संत महात्मा के चित्र का ध्यान करते हैं। यह गुरबाणी की शिक्षा के अनुकूल नहीं है। हमारी सुरति ने असीम वाहिगुरु जी से मिलाप करना है, किसी सीमित कागज़ के चित्र या पत्थर की मूर्ति से नहीं। ध्यान करते करते व्यक्ति उसी वस्तु का रुप हो जाता है अत: हम मूर्ति या चित्र में ही फंस कर रह जाएंगे। वाहिगुरु जी की सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता तक नहीं पहुँच सकेंगे। वह वाहिगुरु किसी चित्र या मूर्ति तक सीमित नहीं है। वह तो घट - घट का वासी है। याद रहे, यदि कहीं ऐसी गलती कर बैंठे तो फिर उतना ही समय इस गलती को ठीक करने में नष्ट हो जाएगा।

गुरु के 'चरणों' का ध्यान धरना है, गुरु की 'मूरत' (मूर्ति) को मन में बसाना है परन्तु वे 'चरण' और वह मूर्ति कौन सी है : -

गुर की मूरति मन महि धिआनु ॥

गुर कै सबदि मंत्र मनु मान ॥ (अंग - 864)

वह है गुरु का 'शब्द' । गुरु का 'शब्द' ही गुरु के चरण है और गुरु की मूर्ति भी, गुरु का शब्द ही है।

गुरमति में 'वाहिगुरु' शब्द गुरुमंत्र है। अत: इसी का ध्यान करना उचित है। धीरे-धीरे, अभ्यास करते करते, ध्यान परिपक्व हो जाता है और दृश्यमान और अदृश्य की समस्या नहीं आती। गुरमंत्र के अक्षर ही सगुण स्वरूप का काम करते है।

गुर मूरति गुर सबदु है ।।

एकाग्रता

एकाग्रता : किसी एक बिन्दू पर ध्यान को स्थिर करना, एकाग्रता कहलाता है। हमारा हृदय, स्मृति या सुरति मन, मति और बुद्धि, 'गुर-शब्द' में स्थित हो जाय। केवल एक ही 'शब्द' का ध्यान हो, शेष सभी मन के संकल्प-विकल्प और बुद्धि की चतुराईयाँ खत्म हो जाने को, मन की स्थिरता या एकाग्रता कहते हैं।

एकाग्रता पैदा करने के लिए, मनोवृत्तियों को बाहर से रोक कर, अन्तर्मुखी करना अति आवश्यकता है। यदि मन में राम को बसाना है तो इसे संकल्पों से रिक्त करना पड़ेगा।

वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ।। (अंग-474)

किसी वस्तु (बर्तन) में कोई दूसरी वस्तु तभी डाली जा सकती है जब उसमें पहले से पड़ी वस्तु को बाहर निकाल लिया जाए । नहीं तो दोनों वस्तुएँ व्यर्थ हो जाएँगी। मन को 'शब्द' में जोड़ने के लिए उसे रजो, तमो और सतो-तीनों से खाली करना पड़ेगा क्योंकि संसार की रचना और हमारी मानसिक अवस्था, इन तीन गुणों में ही विचरण करती है।

मन एक तरह की फलौपी (कम्पयूटर की रील) है, जिस के ऊपर जो भी रिकार्ड करेंगे, वह उसे हमेशा के लिए संभाल रखेगी और जब आवश्यकता होगी वे विचार हमारे सामने प्रस्तुत हो जाएँगी। विचार आते रहेंगे और विचारों की ये लहरें मन को स्थिर नहीं होने देंगी। जब एकांत में आप नाम-सिमरन के लिए बैठेगे तो पाएँगे कि नाम-शब्द तो एक तरफ रह गया और मन पर अंकित विचार ही एक एक करके नदी के बहाव की तरह चलते जा रहे हैं। 'शब्द' में ध्यान नहीं जुड़ता। इससे भाव यह है कि मन की 'फ्लौपी' पर कम से कम विचार टेप होने चाहिए । 'वाहिगुरु' का नाम टेप करने के लिए मन की सतह (फ्लौपी) को साफ रखना पड़ेगा। यदि विचार आएं भी तो, वे आत्मा-परमात्मा, गुरु-गुरबाणी, सेवा-सिमरन और सत-संगत विषयक ही हो। गुरबाणी शब्द का चिन्तन हो। परमार्थी ज्ञान की धारा को निरार्थक-पदार्थवादी विचारों से शून्य करने की आवश्यकता है। तब जाकर आत्म-मण्डल के दर्शन होते है, आत्मगढ़ पर विजय प्राप्त होती है। संकल्प-विकल्प की समाप्ति का नाम ही वास्तविक एकांत है। जब ध्यान में एक 'शब्द' का निवास हो गया और शेष सब कूड़ा-कर्कट साफ हो गया, अंत में एकमेव शब्द का ध्यान रह जाता है और यही एकांत कहलाता है। गुरबाणी का आदेश है :-

प्रभ की उसतति करहु संत मीत ।।

सावधान इकागर चीत ।। (अंग-295)

आत्मा को परमात्मा में लीन करने के लिए एकाग्रता अति आवश्यक है। इस दिशा में उठाए जाने वाले पगों में, एकाग्रता मुख्य अंग है। एकाग्रता से किया गया पाठ, जाप, अजपा-जाप तथा सिमरन ही सफल होता है, साधना रूपी पौधा फलता-फलता है।

आम शिकायत यह होती है कि सिमरन में मन नहीं लगता, रस प्राप्त नहीं होता । दिल तो चाहता है कि सिमरन करें, परन्तु मन के संकल्प-विकल्प ही खत्म नहीं होते। गुरबाणी का पाठ करते समय, ध्यान नहीं टिकता और मन कहीं और भटकता रहता है। यह शिकायत बहुत से अभ्यासियों की है, यह सत्य है। मन को टिकाने के लिए विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं तो आम तौर पर हम नहीं करते। हम चाहते तो हैं कि मन टिके, एकाग्रता बने, परन्तु उसके लिए प्रयत्न नहीं करते। रोग को दूर करने के लिए औषधि नहीं लेते।

यहाँ हम उन प्रयत्नों का वर्णन करेंगे और उन्हें दो भागों में बाँट कर समझने का प्रयत्न करेंगे। पहले भाग में प्रायोगिक साधना की चर्चा होगी और दूसरे में हमारा प्रति दिन का जीवन कैसा हो, उसका विचार करेंगे।

प्रायोगिक साधना : सबसे सरल और सही ढंग तो यही है कि आरम्भ में नाम का जिह्बा द्वारा बोल कर उच्चारण किया जाय। जो हम बोलते हैं, उसमें से शब्द की ध्वनि निकलती है। उस ध्वनि में अपना ध्यान लगाएँ और कानों द्वारा उस ध्वनि को सुने। अपने द्वारा बोले गए शब्दों को अपने ही कानों से सुनना चाहिए। जब हम अपने ध्यान को, उच्चारण किए गए शब्दों को, सुनने के कार्य में लगा देंगे तो मन की भाग - दौड़ बहुत हद तक कम हो जाएगी।

कई लोग मन को टिकाने के लिए माला का प्रयोग करते है। माला के मोती की टिक - टिक के साथ, ध्यान का गुरमंत्र के साथ सुमेल करते हैं। परन्तु यह ढंग अधिक सफल नहीं है। शुरु - शुरु में, थोड़े समय के लिए प्रयोग किया जा सकता है, मन में यह विचार बना रहे कि आखिर इसका त्याग करना ही है। माला, हमेशा के लिए प्रयोग नहीं की जा सकती । हाथ की क्रिया और मानसिक क्रिया बहुत देर तक साथ साथ नहीं चल सकती क्योंकि सुरति (ध्यान) को अर्न्तमुखी होना है न कि बहिर्मुखी। बाहरी शारीरिक क्रिया - क्लाप, सभी मन की स्थिरता के लिए हैं और मन अंदर की वस्तु है, सो जो क्रिया अन्तरात्मा में होगी वही सफल होगी।

हरि माला उर अंतरि धारै ॥
जनम मरण का दूखु निवारै ॥ (अंग - 388)

सदैव के लिए माला का प्रयोग, समाधि की अवस्था तक पहुँचने में बाधा बनती है। कई बार माला का फेरना एक दिखावा भी बन जाता है। इससे हमारे अहंकार को बल मिलता है। जैसे, भक्त कबीर जी कहते है : -

कबीर जपनी काठ की किआ दिखलावहि लोए ॥
हिरदै रामु न चेतही इह जपनी किआ होए ॥ (अंग - 1368)

माला के साथ हम गिनती के चक्कर में भी पड़ सकते हैं। मन फिर गणना ही करता रहेगा, जो निरार्थक होगा और समय व्यर्थ जाएगा। सिमरन तो श्वास प्रति श्वास करने का आदेश है, फिर गिन कर दस बीस माला फेरने का क्या लाभ होगा?

बहुत से भाई, चित्र का सहारा लेते हैं। चित्र चाहे गुरु साहिब का हो या कोई और। जब इसके माध्यम से अभ्यास परिपक्व हो जाएगा तो आप चित्र को पीछे नहीं हटा सकेंगे, और 'शब्द' पीछे रह जायगा। केवल चित्र की ही झलक नज़र आने लगेगी। गुरमति का मार्ग, 'शब्द' का सहज और सरल मार्ग है, न कि शरीर का या मूर्ति - पूजन का। कई बार चित्र के स्वरूप की झलक मिलने पर भूल से जिज्ञासू उसे गुरु दर्शनों से जोड़ देते हैं पर वे नहीं समझते कि गुरु कोई देह (शरीर) नहीं गुरु तो शब्द रूप है : -

सबदु गुरु सुरति धुनि चेला ॥ (अंग - 943)

फिर यदि हम सिमरन की ऊँची अवस्था को प्राप्त करना चाहेंगे तो चित्र के पुजारी बनकर, आत्मिक - मण्डल के वासी बनना बिल्कुल ही असम्भव हो जाएगा।

प्रमुख बात तो यही है कि उच्चारण किए जा रहे गुर - मंत्र की ध्वनि को सुने। इससे मन स्थिर होता है। ऐसा भी कर सकते हैं कि गुर - मंत्र को अक्षरों को सामने लिखा हुआ ख्याल (कल्पना) कर लें। ध्यान अक्षरों में लगा कर जाप करते रहें। या फिर एक ढंग और भी हो सकता है कि स्वयं को गुरु ग्रंथ साहिब जी के समक्ष बैठे हुए प्रतीत करें। किसी भी दरबार साहिब के अंदर, जो आपके मन में बसा हुआ हो, चाहे किसी और गुरुद्वारे का, गुरु साहिब के प्रकाश वाला कमरा हो, या अपने ही घर का गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश स्थान हो, उसके अंदर अपने शरीर का निवास समझ कर, सिमरन जारी रखें। यह कोई कठिन बात नहीं। थोड़े ही अभ्यास से यह युक्ति दृढ़ हो जायगी तथा अन्य युक्तियों (चित्र, माला आदि) से अधिक सफल सिद्ध होगी, क्योंकि गुरु ग्रंथ साहिब जी शब्द - गुरु हैं और 'शब्द' का ही हमने आश्रय लेना है। इससे 'शब्द' ही दृढ़ होगा जो हमारी साधना का सही मार्ग है।

मन को स्थिर करने के लिए कोई केन्द्र बिन्दु अपनी शरीर के किसी अंग पर, बाहर या अंदर, नियत किया जा सकता है। मन को उस बिन्दु पर थोड़े समय के लिए स्थिर करें और चेतना में गुर - मंत्र का पाठ करते रहें। बेशक, आरम्भ में मन की स्थिरता कुछ पलों के लिए ही हो। अभ्यास में बैठना तो बहुत समय तक पड़ेगा परन्तु शायद ध्यान बहुत कम समय के लिए टिके। घंटो बैठने के बाद, एक दो मिनट के लिए भी ध्यान लगना शुरु हो गया तो समझ लें कि साधना में तरक्की (उन्नति) हो रही है। प्रयत्न जारी रहना चाहिए। थोड़े दिन और समय अभ्यास करके, मन को स्थिर न होते देख कर घबराना नहीं चाहिए, यह तो जन्म - जन्मान्तरों का खेल है।

ये बिन्दु केवल एकाग्रता की परिपक्व करने के लिए चुने जा सकते है, हमेशा के लिए नहीं क्योंकि अगली अवस्थाओं में जाकर जब ध्यान ऊँचे आत्मिक मण्डलों में जायगा तो शरीर भी पीछे छूट जायगा।

जब किसी केन्द्र-बिन्दु पर मन को टिका कर चेतना द्वारा 'शब्द' का अभ्यास करें तो अपनी सांसों को भी उसके साथ मिला कर अभ्यास करना लाभ दायक है। इससे मन अच्छी तरह स्थिर होता है। यह में कोई योगमत की बात नहीं कर रहा। श्वास (सांस) तो चलते ही हैं। श्वास-प्रतिश्वास का चक्कर स्वभावत: चलता रहता है। 'शब्द' को श्वास के साथ मिलकर, ध्यान के द्वारा प्रेम के साथ 'शब्द' की ध्वनि को सुनना है। इस प्रकार, आत्मरस की प्राप्ति आरम्भ हो जाती है। जब आत्मरस की प्राप्ति होने लगे, तो फिर :-

झिमि झिमि वरसै अंम्रित धारा ॥

मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा ॥

अनद बिनोद करे दिन राती सदा सदा हरि केला जीउ ॥ (अंग-102)

अमृत की फुहार छूटती है। रिम -झिम, रिम-झिम होती है। मन मरने की करीब आ जाता है। रस का पान करता है। काफी टिक जाता है। बंदर वाली उछल-कूद छोड़ देता है। धीरे-धीरे, बाहर जाने की जगह, अंदर के रसों की ओर दौड़ता है। अन्तर्मुखी होने का इच्छुक हो जाता है। फिर इसके भटकने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जब हम समाचार पत्र पढ़ते हैं तो कभी ऊँचे स्वर में नहीं पढ़ते । ऐसा कोई विरला ही होगा जो ऊँचे स्वर में बोल-बोल कर समाचार-पत्र का अध्ययन करता होगा। अपने हृदय या ध्यान में सिमरन करने के लिए समाचार-पत्र पढ़ने का उदाहरण बड़ा सार्थक है। समाचार पत्र पढ़ते समय तुम्हारी एकाग्रता पूर्णतया बनी रहती है। उसके लिए तुम कोई विशेष प्रयत्न भी नहीं कर रहे होते, बस पढ़ने की इच्छा से एकाग्रता बनी रहती है।

जैसे एक वैज्ञानिक, प्रयोगशाला के ऐकांत में बैठ कर, अपने मन को, मस्तिष्क को, शरीर को, अपने सारे शारीरिक और मानसिक बल को, प्रयोग करने में लगा कर, कोई न कोई नया अविष्कार कर देता है। ठीक उसी ढंग से, नाम साधना में मन को एकाग्र करने की आवश्यकता है।

आप कमरे में बैठे हैं। वहाँ घड़ी को टिक-टिक की आवाज़ सुनाई देती है। तो 'शब्द' को आप उस टिक-टिक की ध्वनि के साथ जोड़ सकते हो। कोई मशीन तुम्हारे नज़दीक चल रही है, उसकी रफ्तार के साथ भी 'शब्द' का मेल करने से सिमरन चलता है और बड़े ही एकाग्र-चित के साथ चलता है।

हरहट भी तूँ तूँ करहि बोलहि भली बाणि ॥

साहिबु सदा हदूरि किआ उची करहि पुकार ॥ (अंग-1420)

गुरु अमरदास जी ने हरहट (पुराने ढंग का कूँआ) की आवाज़ सुनी तो उन्हे लगा कि हरहट भी ''तूँ ही तूँ, तूँ ही तूँ'', कह रहा है। भाव यह कि 'शब्द' और 'सुरत' का तादात्म्य होने पर, जड़ वस्तुओं की आवाज़ में भी प्रभु के सिमरन का ही अनुभव होता है।

जब पक्षी बोलते हैं, विशेष करके पपीहा बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। अगर उनके स्वर में से भी 'वाहिगुरु-वाहिगुरु' सुनाई देने लग जाय तो यह स्थिति कोई असम्भव नहीं, केवल ध्यान और लगन की आवश्यकता है :-

जो बोलत है म्रिग मीन पंखेरू

सु बिनु हरि जापत है नही होर ॥ (अंग-1265)

बस में यात्रा कर रहे हैं तो उसकी आवाज़ के साथ अपना ध्यान जोड़ कर साधना करें। रेलगाड़ी में जा रहे हैं तो रेल भी अपनी छुक-छुक की ध्वनि से नाम-आलाप करती हुई प्रतीत होगी। साईकल चला रहे हैं तो पैडल के साथ अपना ध्यान जोड़ लो। भाव यह कि जो भी क्रिया आपका शरीर करता है, उसके साथ मन करके, उसमें प्रभु की याद को अनुभव करने का प्रयत्न करना है। पैदल चल रहे हैं तो कदमों के साथ अभ्यास के उच्चारण का मिलाप कर लें। इन सभी प्रयत्नों का भाव, सिमरन करने से है, श्वास-प्रतिश्वास नाम जपने से है, रोम-रोम चिन्तन करने से है।

अमृत काल (अमृतवेला) में की गई साधना सारा दिन काम आती है। अमृत काल में बेनागा अभ्यास करना चाहिए। प्रतिदिन करना है, कभी-कभी नहीं। कभी कर लिया कभी नहीं, इससे एकाग्रता में विघ्न उपस्थित होता है। कुछ प्राप्ति नहीं होती। नियत समय पर नियत स्थान पर प्रतिदिन किए जाने वाले अभ्यास से शीघ्र सफलता मिलती है। मन अपने आप स्थिर हो जाता है। अमृत-काल से अधिक एकांत कहीं नहीं मिल सकता। इस समय बिल्कुल शान्त वातावरण होता है। आरम्भ में, शान्त वातावरण में बैठ कर अभ्यास करना बहुत आवश्यक है। इस समय विश्व भर के अभ्यासी व्यक्ति अपने अपने आसन पर बैठकर सिमरन कर रहे होते हैं, सब ओर से नाम-तरंगें सारे ब्राह्मण्ड में फैल जाती है और जहाँ आप बैठे हैं वहाँ भी पहुँच रही होती हैं। जिसके कारण मन स्वभावत: ही 'शब्द' में लीन हो जाता है।

अमृत वेले से दूसरे स्तर का एकान्त, बाहर कहीं आबादी से दूर, किसी झील या नदी के किनारे, किसी बाग बगीचे, या निर्जन जंगल में, रेत के टीले या पहाड़ की चोटियों या कन्दराओं में भी प्राप्त हो सकता है। हमारा धर्म गृहस्थ प्रधान है अत: ऐसे एकान्त का हम थोड़े समय के लिए तो लाभ उठा सकते हैं परन्तु यह नहीं हो सकता कि अपना घर बार छोड़ कर हम इन स्थानों में ही जाकर बैठ जाएँ। कई बार एकान्त में भी मन का बिखराव, बड़ा दु:खदायक होता है। जो वस्तु सांसारिक तौर पर तुम्हें बहुत प्रिय प्रतीत होती है या जिसने तुम्हारे दिलो दिमाग को अधिक प्रभावित कर रखा है, वही अपने आप तुम्हारे विचार में बार-बार आती रहेगी। परन्तु हमारे अंदर प्रभु-प्रेम के आकर्षण के कारण, हमारा ध्यान शीघ्र ही -शब्द' में लीन हो जायगा। स्वत: ही ध्यान में सिमरन आरम्भ हो जायगा। आस-पास के प्राकृतिक-दृश्य देख कर स्वभावत: ही मन कादर (कर्त्ता) की याद में डूब जाता है। इस तरह से 'शब्द' का अभ्यास एकाग्र-चित और रस पूर्ण होता है। बड़ा ही आनन्द का समय होता है, जब :-

भिंनी रैनड़ीऐ चामकनि तारे ।।

जागहि संत जना मेरे राम पिआरे ।। (अंग-459)

रात्रि में सोने के समय और प्रात: काल अमृत वेला में आकाश पर नजर डालें तो तारों भरे आकाश (गगन मय थाल) के थाल में से एक मन्द-मन्द और मीठी मीठी रोशनी देने वाले चाँद की ठण्डक आँखों को स्पर्श करती है। वाहिगुरु जी का सुंदर और विराट रूप नज़र आता है। प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं पारब्रहम परमेश्वर जी के, अगर हमारी दृष्टि इस योग्य हो। हमारा रोम-रोम 'वाह वाह' से परिपूर्ण हो जाता है, सारे शरीर में आनन्द की थरथराहट छिड़ जाती है। मन गहरे बहाव में बह जाता है और फिर मन तो रहता ही नहीं। आत्मिक हिलोरे आते हैं। यहाँ कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता एकाग्रता का । अपने आप ही रसना से निकलेगा-वाहिगुरु, वाहिगुरु, वाहिगुरु.....

इसी तरह से देखें उसका रूप, पेड़ पौधों में, फूलों की सुगन्धि में, हरे-भरे खेतों में, छोटी छोटी पहाड़ियों की हरियाली में। प्रकृति को देख कर मन स्थिर हो जाता है। कर्त्तार (कादर) का ध्यान आता है। हर वस्तु उसका ही राग अलापती दृष्टिगोचर होती है :-

गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु

यथा

गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ।।

एक और युक्ति है एकाग्रचित्त होने की। गुरबाणी के कीर्तन में जुड़ कर एकाग्रता सहज ही बन जाती है परन्तु वहाँ और कई बुराइआँ हमें घेर लेती हैं। 'शब्द' में मन को जोड़ने के स्थान पर हम संगत या कीर्तन करने वालों को ही देखते रहेंगे। कीर्तन की ध्वनि का ध्यान, अन्तरात्मा में स्थित करके कीर्त्तन का श्रवण जरुरी है। कथा-श्रवण के समय भी मन, गुरमंत्र का अभ्यास अन्तरात्मा में करता रहे और बाह्य कानों से वचन सुनता रहे।

गुरु कृपा और अरदास :-

भाई रे गुर बिनु सहजु न होइ ।।

सबदै ही ते सहजु ऊपजै हरि पाइआ सचु सोइ ।। (अंग-68)

गुरु के पास हर समय अरदास (विनती) करते रहें। सतिगुरु सचे पातशाह जी, नाम का दान दो। मन में निवास करो। अपने चरणों के साथ लगाए रखो। अपना प्रेम दो, प्रीति दो। बहुत जन्मों से हम तुमसे बिछुड़े हुए है। हे पिता जी इस जन्म में तो हमें मिलो, हमें दर्शन दो :-

बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे ॥

कहि रविदास आस लगि जीवउ चिर भइउ दरसनु देखे ॥ (अंग-694)

ऐसी प्रार्थना से सतिगुरु प्रसन्न होंगे। उनकी कृपा से मन के किवाड़ खुलेंगे । बार बार अनुनय-विनय करनी है। पिता जी शरणागतों की लाज रखें :-

गुरु जहाजु खेवटु गुरु गुर बिनु तरिआ न कोइ ॥

गुर प्रसादि प्रभु पाइऐ गुर बिनु मुकति न होइ ॥ (अंग-1401)

इस तरह गुरु कृपा से, अभ्यास-कमाई करते करते सहज-समाधि की अवस्था आती है। परम-पद, चौथा-पद, तुरीया अवस्था, निज घर आदि कई नामों से जिसको पुकारा जाता है, उस अवस्था का स्वामित्व प्राप्त होता है। फिर जिज्ञासु वाहिगुरु जी से बातें करता है, परम पिता वाहिगुरु जी की गोद में जा समाता है। खुशी और आनन्द में डूब जाता है।

सुंन समाधि गुफा तह आसनु ॥

केवल ब्रहम पूरन तह बासनु ॥

भगत संगि प्रभु गोसटि करत ॥

तह हरख न सोग न जनम न मरत ॥ (अंग-894)

दिनचर्या (नित्य जीवन) – सिमरन में एकाग्रता पैदा करने के लिए हम प्रायोगिक साधना पर विचार कर चुके है। प्रायोगिक साधना के साथ-साथ यह जरूरी है कि हमारी दिनचर्या सदाचारपूर्ण और पवित्र हो। हमारे द्वारा किए जाने वाले नित्य जीवन के कर्म एकाग्रता में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। अभ्यास के अतिरिक्त ये कर्म किस प्रकार के हों, आइए जारा दृष्टिपात करें।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सिमरन-साधना के लिए हमारे मन की फ्लॉपी, जैसे कि पीछे भी बयान कर चुके हैं, बिल्कुल नई और साफ सुथरी होनी चाहिए। इसमें किसी प्रकार का, विषय-विकारों का कूड़ा-कर्कट नहीं होना चाहिए। इसे दूसरे अर्थो में पवित्र-मन भी कहा जाता है। सिमरन में मन के न टिकने का सबसे बड़ा कारण यही है कि नित्य जीवन के कार्य करते हुए हम अपने मन की बागडोर खुली छोड़ रखते है। उस पर कोई नियंत्रण नही रखते। मन अपनी इच्छानुसार, अच्छे या बुरे कर्म करता रहता है।

वाहिगुरु जी के दर्शन की लालसा हो तो नाम सिमरन द्वारा अपने मन को शुद्ध करने के लिए अपने अंदर सदाचार का भाव स्थापित करना पड़ता हैं। अपने मन को काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार की मैल से दूर रखना पड़ता है। गृहस्थी होने के नाते, उपरोक्त प्रवृतियों का हमने आंशिक रुप से ही प्रयोग करना है। इनके वश में नहीं होना बल्कि ये पाँचों ठग हमारे वश में रहें। जितनी आवश्यकता हो उतना ही इनका प्रयोग करें। इन्हें अपने सेवक समझें और अपने नियंत्रण में रखें। अगर हम इन पाँच विकारों में डूबे रहेंगे तो नाम सिमरन में मन का जुड़ना, कठिन ही नहीं बल्कि असंम्भव हो जायगा।

अगर नित्य जीवन में हमारा ध्यान काम-वासना में रहेगा तो नाम-अभ्यास के समय भी मन के अंदर काम के विचार चलते रहेंगे। रसना से भले ही हम 'शब्द' उच्चारण करते रहें, परन्तु मन की वृति इन्द्रियों के रस में घूमती रहेगी। इसी तरह क्रोधी का मन जो अशान्त होता है, अभ्यास के समय भी अशांत रहेगा और अशान्त मन शब्द में कैसे एकाग्र हो सकेगा?बाहरी क्रोध के फलस्वरुप, भक्ति में कोई उन्नति न देखकर फिर क्रोध करेगा। क्रोध तभी आता है जब हमारी कोई इच्छा पूरी नहीं होती। परन्तु काम और क्रोध हमारी काया को नष्ट कर देते हैं :-

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै ॥

जिउ कंचन सोहागा ढालै ॥ (अंग-932)

सब्र - संतोष की और सतिगुरु पर विश्वास की आवश्यकता है। लोभ और मोह में निमग्न मनुष्य का मन, बंदगी में कम ही लगेगा। मायावादी पदार्थो से अधिक प्यार, अधिक सम्पत्ति एकत्र करने की लालसा और संतान का मोह बंधन, एकाग्रता के मार्ग में रुकावट बनते हैं। जैसे अधिक लोभ सांसारिक तौर पर बुरा माना जाता है, उसी तरह सिमरन में भी लोभ करने से उचित फल प्राप्त नहीं होता। लोभ के अधीन हम हठ कर बैठते हैं जिस का परिणाम ठीक नहीं निकलता ।

अहंकार से पीछा छुड़ाना अति कठिन हैं। धन प्राप्त हो गया या बेटी बेटे अच्छा पढ़ लिखकर अच्छे पदों पर आसीन हो गये तो व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। अहं से परिपूर्ण मन कभी सिमरन में नहीं टिक सकता। वास्तव में बंदगी का अर्थ ही अहं को मिटाना है। 'अंह' का रूप, एक ही बाहरी सांसारिक रूप, माया वाला 'अहं' नहीं, 'अहं' का भाव, 'मै' छोड़ कर 'तू' हो जाना, या हर ओर, दसों दिशाओं तथा जर्रे जर्रे में 'वाहिगुरु' जी को अनुभव करना है। 'अहं' चाहे कण मात्र ही हो, सिमरन में रुकावट बनता है। गुरु जी ने इसे 'दीर्घ रोग' कहा है। दीर्घ से भाव बहुत पुराने रोग (Chronic Disease) से है जिसका उपचार बहुत कठिन है और लम्बा होता है। उपचार ही भी सकेगा या नहीं, इसका भी भरोसा नहीं होता। परन्तु अहंकार का उपचार, इसी में छिपा है अगर इसकी समझ आ जाये : -

हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ।। (अंग - 466)

नित्य जीवन व्यापन करते हुए, अहं का त्याग करना है। प्रयत्न करना है इसे 'तू' में परिवर्तित करने का। जो भी पदार्थ या धन दौलत हमारे पास आते हैं उन्हें गुरु महाराज का दान समझ कर प्रयोग करें: -

कबीर मेरा मुझ महि किछु नहीं जो किछु है सो तेरा ।। (अंग - 1375)

ऐसी अवस्था तक पहुँचने का लक्ष्य मन में लेकर, स्वयं को यह समझना चाहिए कि हे मन, तूँ कहाँ भटक रहा है ?किस बात का गर्व करता है ?किस बात का अहँकार करता है ?यह सब तो वाहिगुरु जी की माया है। तेरे अंदर कहाँ इतनी ताकत है कि तू किसी वस्तु का कर्त्ता अथवा मालिक कहला सके, यह सब उसी की ही देन है।

सो आवश्यकता है, उपरोक्त पाँच प्रवृतियों (विकारों) के त्याग की। इनको अपने नियंत्रण में रखने की। इनको अपने अंतर से बाहर निकाले बिना, सदाचार अपनाए बिना, आत्मिक अनुभव असंभव है: -

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ।। (अंग - 730)

ऐसे आदेश है कि इस संसार में रहते हुए, सारे कार्य कलाप करते हुए, उनमें लिप्त न हो, बल्कि निर्लिप्त रहें और अपनी 'सुरति' को इन पाँच चोरों से बचा कर रखें। तब कहीं, एकाग्र चित्त से अभ्यास करके, अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर सकते हैं।

गुरबाणी पाठ : गुरबाणी से प्यार करने पर, गुरबाणी का पाठ और मनन करने से, मन बाहिर्मुखी वृत्ति को त्याग कर अन्तर्मुखी होना शुरु हो जाता है। वौराग्य पूर्ण बाणी जैसे श्री गुरु तेग बहादुर जी की बाणी और कबीर तथा फरीद जी के श्लोक, जितने अधिक पढ़े जाँय, मन पर गहरी चोट करते हैं। अनन्द साहिब तथा और सारी बाणी, मन को समझाने में सहायक होती है और प्रभु भक्ति के लिए प्रेरित करती है। गुरबाणी का अभ्यास करते करते बहुत सारी शंकाएँ स्वयमेव निवृत होती रहती हैं। बाणी - पाठ अभ्यास कई बार, नाम - अभ्यास में परिवर्तित हो जाता है, परन्तु बहुत उच्च अवस्था में पहुँचने के बाद। बहुत से ऐसे उपदेशात्मक 'शब्द' हैं जिनका पाठ करते करते मन स्वयं ही नाम - सिमरन में लग जाता है, विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। बाणी, नाम जपने की प्रेरणा देती है और प्रेरणा ही नहीं, अंतर में बस कर, मन को सीधा करके मन अभ्यास में लगा देता है। 'नितनेम' की बाणी के अतिरिक्त, शेष गुरबाणी का पाठ, रोजाना जीवन का भाग बन जाना चाहिए। हो सके तो गुरु ग्रंथ साहिब जी का एक सहज पाठ हमेशा जारी रखें। उसे सम्पूर्ण करें और अगला फिर शुरु कर दें। मन बेचारा क्या करेगा ?कहाँ, दौड़ेगा ?अभ्यास करते हुए अगर मन उचाट हो तो फिर गुरुबाणी पढ़ना शुरु कर दें जो फिर इस मन को नाम से जोड़ देगी। पाठ समझ कर करे, शब्द के अर्थ और भाव पर गौर करे। वैराग्य उत्पन्न होगा, मन स्वयमेव अन्तर्मुखी हो जायगा।

मन बैरागु भइया दरसनु देखणै का चाउ ।।

धंनु सु तेरा थानु ।। (अंग - 50)

उस वाहिगुरु के स्थान को देखने के लिए, उसके दर्शन के लिए मन उतावला होने लगता है। वैराग्य में आता है। उसके गीत गाता है और फिर स्थिर हो जाता है।

सत संगति : प्रतिदिन सत संगति करने की आवश्यकता है। साधु-संगति में श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की पावन उपस्थिति में बैठकर, कथा कीर्तन करना या सुनना, एकाग्रता के लिए एक जरुरी अभ्यास है। कीर्तन के माध्यम से मन जल्दी 'शब्द' में लीन होता है। वाहिगुरु शब्द की ध्वनि आन्तरिक अनहद ध्वनि की खोज करती है। सत संगति में, इस प्रकार अभ्यास करते हुए बहुत बड़ी सफलता मिलेगी। 'शब्द' की विचार, हरि की कथा-कहानियाँ सुन-सुन कर मन संभलता जाता है। गुरबाणी की व्यारव्या-युक्त पुस्तकों की संगति भी सत संगति बन जाती है। उन सत्-पुरुषों की संगति भी उचित है, जिनके जीवन से कोई अच्छा गुण प्राप्त कर सकें। जिनके जीवन का कोई पहलू हमें सिमरन की ओर प्रेरित कर सकें उनके अभ्यास की कमाई की तीव्र किरणें हमारे सोए हुए अंत:कर्ण को झिंझोड़ कर जगा सकती हैं। ऐसे महापुरुषों के दर्शन करते ही सिमरन चालु हो जाता है। इस प्रकार के गुरमुख-पुरुषों की संगति लाभदायक है। परन्तु ध्यान रखें, जुड़ना हमने गुर-मंत्र 'शब्द' से है, व्यक्ति से नहीं। वास्तव में हमने गुरबाणी और गुरु ग्रंथ साहिब से हृदय जुड़ना है और सत-संग भी यही है।

गुरबाणी संगत बिना दूजी ओट नही है राई ।।

जो संगति हमें किसी व्यक्ति से जोड़े, भूल कर भी उधर कदम नहीं उठाना ।

बोल चाल : दिन में काम काज करते हुए, लोगों के साथ बातचीत करते हुए, सदैव मीठा बोलें। किसी को भी कटु शब्द न कहें और बोलें भी बहुत कम। उतना ही बोलें जितना कारोबार में सहायक हो। व्यर्थ की बातें मन की वृत्तियों को विकीर्ण करती है।

किसी के साथ बोले गए, कडुवे या फीके शब्द, मन को सिमरन में एकाग्र नहीं होने देते। कार-व्यवहार करते हुए भी, जितना संभव हो, अधिक से अधिक समय सिमरन में लगाया जाय। अधिक बोलने से आत्मिक शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है। क्रोध में बोले गए कडुवे बोल या घृणा के कारण मुख से निकले फीके शब्द, सिमरन के समय भी स्मृति में आकर रोड़ा अटकाएंगे, बाधा उपस्थित करेंगे जो भी बोले वह मिठास से परिपूर्ण हो तथा गुरबाणी के आशय के अनुकूल हो। गुरवाक है :-

भगता की चाल निराली ।।

चाला निराली भगताह केरी बिखम मारगि चलणा ।।

लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाही बोलणा ।। (अनंद साहिब)

इस प्रकार मन की स्थिरता का अभ्यास होने लगता है। जितना कम बोलेगे, उतना ही शब्द का निवास हमारी 'सुरति' में अधिक होगा मन के न टिकने की शिकायत नहीं रहेगी।

स्व-आलोचना : रात में सोने से पहले, अपने दिन भर के किए कर्मो पर नज़र डाली जाए। हो सके तो डायरी रखी जाए और लिखी जाए। अपने अच्छे बुरे कर्मो पर विचार करके, उन्हे गुरबाणी के तराजु में तोल कर बुरे कर्मो से छुटकारा पाने का प्रण करें। यह विचार किया जाय आज पाँच-विकार रूपी चोरों में से किस किसने हम पर कितने-कितने हमले किए?हमने अपने आपको उनके आक्रमण से कहाँ तक बचाया?हमारी हार हुई या जीत और हार के क्या कारण हैं?संसार या पदार्थवाद के साथ हमारा सम्बन्ध कहाँ तक जुड़ा?एक ओर से तोड़ कर ही, दूसरी ओर सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है और बिना नाम जपे कितना समय नष्ट हुआ?यह नहीं सोचना चाहिए कि आज कितना पाठ किया, बल्कि यह देखें कि कितना समय इस तरफ नहीं लगा। मन को नियंत्रण में करने, और उसकी रुचि नाम सिमरन की ओर प्रेरित करने के लिए ऐसा करना जरुरी है।

ईर्ष्या-घृणा : झूठ-फरेब, निन्दा चुगली, चोरी-चकारी, वैर-विरोध आदि नित्य जीवन में किए गए ऐसे कर्म कब हमारे मन को शब्द के साथ एकाग्र होने देंगे। गुरमुख इन सब कुकर्मो से दूर रहता है इसी लिए वह शब्द-सुरत (ध्वनि-ध्यान) के संयोग का रस पान करता है।

कार-व्यवहार : कार-व्यवहार में की गई किसी प्रकार की हेरा फेरी, हमारे मन को स्थिर नहीं रहने देगी। ईमानदारी पूर्ण धनोर्पाजन, और सत्य व्यवहार से मन शान्त रहता है।

रहन – सहन : सांसारिक पढ़ाई करते समय, डिग्री प्राप्त करने हेतु एकाग्रता बनाने के लिए हम अपना सारा बल लगा देते हैं। दिन-रात एक कर देते हैं, बहुत कम सोते हैं। पुस्तकें खरीदने के लिए, धन संबंधी किसी तरह का संकोच नहीं करते। स्कूल-कॉलेज से बचे समय में ट्यूशन रखते हैं और उसके लिए धन की परवाह नहीं करते। समय का इतना ध्यान रखते हैं कि कई बार आवश्यक समाजिक कार्यो और समागमों में भी शामिल नहीं होते ताँकि सारा समय अध्ययन में लगा सकें। परिश्रम करते हुए अपने खान-पान और पहरावे पर भी अधिक ध्यान नहीं देते। सादा भोजन और साधारण पोशाक पसंद करने लगते है। यह सब किस लिए?क्योंकि हमारे सामने कोई मन्तव्य है, डिग्री प्राप्त करने का या कोई पदवी प्राप्त करने का। जब हमारे सामने **"गोबिंद मिलण की इहु तेरी बरीआ"** का मन्तव्य होगा, तो इसकी प्राप्ति के लिए मन्तव्य से एक स्वर होने पर, संकीर्ण मार्ग भी खुल जाएगा। इसे कबीर जी पहले कठिन मार्ग कहते हें परन्तु फिर गुरु की कृपा से वह सरल बन जाता है :-

कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसवै भाइ ॥

मनु तउ मैगलु होइ रहा निकसिआ किउ करि जाइ ॥ (अंग-509)

जब गुरु की कृपा हो गई तो :-

ऐसा सतिगुरु जे मिले तुठा करे पसाउ ॥

मुकति दुआरा मोकला सहजे आवउ जाउ ॥

एकाग्रता क्यों नहीं बनेगी?जरुर बनेगी ।

आहार : अगला बिन्दु है आहार का, हमारे खान पान का। आहार जितना शुद्ध होगा, उतना ही नाम मन में बसेगा । शुद्ध आहार भी (कम मात्रा में) होना चाहिए :-

अलप आहार सुलप सी निंद्रा ॥

दइआ छिमा तन प्रीति ॥

ऐसा आहार नहीं करना :-

बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ॥

जितु खाधै तनु पीड़ीए मन महि चलहि विकार ॥ (अंग-16)

निद्रा भी कम मात्रा में। यह नहीं कि रात भर गहरी नींद सोते रहें। दिन में फिर थोड़ी नींद ले सकते हैं। नींद पर काबू पाना पड़ेगा। अमृतकाल में भी अगर सोचेंगे कि थोड़ा और सो लें। थोड़ा और करते करते प्रात:काल हो जाएगा। रात में खाना कम खाएंगे तो नींद भी कम आएगी। अन्न का भी अपना नशा होता है। पेट भरके सोऐंगे तो नींद पीछा नहीं छोड़ेगी। एकाग्रता कहाँ से बनेगी?रात्रिकाल में शीघ्र ही सो जाना चाहिए ताकि अमृत काल में शीघ्र उठ कर उसका लाभ उठा सकें।

निष्काम सेवा : रोजी रोटी कमाने के लिए हम सभी बहुत परिश्रम करते हैं, करना भी चाहिए। सांसारिक यात्रा के लिए धन कमाना आवश्यक है, ऐसी गुरु की आज्ञा है। परन्तु गुरु के प्रति जो सेवा करें वह निष्काम होकर करें। गुरु अथवा मनुष्यता के प्रति जो सेवा करें उसमें हमें कोई भी लालच नहीं होना चाहिए। कोई लोभ, कोई आर्थिक लालच या सांसारिक माँग नहीं होनी चाहिए। ऐसी सेवा करते हुए अगर कोई सांसरिक लाभ उठाते हैं तो सेवा निष्काम और परमार्थी नहीं रहेगी। लाभ तो उठा लिया, दर्शन के लिए क्या बचा?सम्मान और प्रशंसा की कामना करेंगे तो अहंकार ही बढ़ेगा। केवल प्रभु-प्रेम और उसके दर्शनों की लालसा ही हमारे मन में होनी चाहिए। ऐसी सेवा मनुष्य को, मोह माया और अहंकार से दूर रखती है अपनी परिश्रम की कमाई का दसमांश गुरु की गोलक को अर्पण करना और उसे किसी भी धर्मार्थ, उपकार के कार्य या गुरबाणी के प्रचारार्थ खर्च करना, सतिगुरु से निकटता उत्पन्न करता है। दसमांश निकालने से त्याग की भावना दृढ़ होती है। इस तरह की गई निष्काम सेवा के लिए 'गुरवाक' है :-

सेवा करत होइ निहकामी ॥

तिस कउ होत परापति सुआमी ॥ (अंग-286)

जब सतिगुर की निष्काम सेवा का फल, परमात्मा की प्राप्ति कहा गया है तो सेवा करते हुए एकाग्रता अवश्य बनेगी। तब ही बाद में उच्चतम फल की प्राप्ति होगी।

इस तरह नाम सिमरन करते और अपने रोजाना जीवन को पवित्रता से व्यतीत करते हुए, जब हम जीवन के पग-पग पर, परमार्थ की ओर ध्यान रखेंगे तो मन की क्या मजाल है कि वह एकाग्र न हो।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

नाम रस

अकाल पुरख वाहिगुरु जी ने इस संसार में अनेक तरह के रस (स्वाद) पैदा किए है। ये सारे रस हमारे लिए हैं क्योंकि सारी मनुष्यता उसका अंश है, और वह स्वयं ही इसका पालक है। जैसे माता-पिता अपने बच्चों के लिए कई प्रकार की सामग्री एकत्रित करने की कोशिश करते हैं जिससे उन्हे सुख-आराम और मानसिक शान्ति प्राप्त हो सके। क्योंकि हम सब वाहिगुरु जी की सन्तान है, अत: वाहिगुरु जी ने अनेक तरह के साधन पैदा किए हैं जो हमें सुख और आराम देते हैं। सांसारिक माता पिता भी, वाहिगुरु की पैदा की हुई वस्तुओं में से अपने और अपने बच्चों के लिए सामग्री इकट्ठी करते हैं। यह सब अपनी सृष्टि के लिए सृष्टा का प्रसाद (बख्शिश) है।

रस या स्वाद क्या है?रस वह वस्तु है जिसे चखने या अनुभव करने से हमारे शरीर और मन को आनन्द मिलता है। रस अनगिनत हैं, परन्तु जिह्बा का रस सर्वोपरि (सबसे बड़ा) माना जाता है। जिह्बा के द्वारा जब हम कोई स्वादिष्ट वस्तु चखते हैं, तो उसमें से रस उत्पन्न होता है और उसका स्वाद शरीर द्वारा मन अनुभव करता है। शक्कर, चीनी, मिश्री, गुड़, शहद और दूध, घी मैदे के बने पकवान, मिठाई, नशीली वस्तुएँ, फल, सब्ज़ियाँ तथा कई तरह के मेवे सभी रसदायक है।

सुन्दर शय्या, मोह-प्यार तथा काम में से भी मनुष्य रस की अनुभूति करता है, परन्तु गुरबाणी के अनुसार, नाम सिमरन से प्राप्त रस, सर्वश्रेष्ट रस है और उसकी तुलना अन्य सांसारिक रसों में से, किसी के साथ भी नहीं की जा सकती। अफसोस है हमें स्वयं पर कि हम गुरु-उपदेश पर ध्यान न देकर, पदार्थो के रस में ही उलझे रहते हैं। हमें नाम-रस का ज्ञान ही नहीं और न ही उसका कोई ध्यान है। बेशक, बाणी भी पढ़ते हैं-पाठ करते हैं-कीर्तन करते और सुनते हैं, परन्तु रस की प्राप्ति तक नहीं पहुँचते। इसका कारण है नाम सिमरन की कमी। हम सिमरन नहीं करते। बस केवल निर्धारित पाँच-बाणियों के पाठ तक सीमित रहते हें, वह भी भाग-दौड़ में पूरा करते है। या फिर कभी केवल जपुजी का पाठ कर लेते हैं, उस पर विचार कभी करते ही नहीं। सिमरन के बिना, सतिगुरु से नाम-रस का दान नहीं मिल सकता।

आन रसा जेते तै चाखे ॥
निमख न त्रिसना तेरी लाथे ॥
हरि रस का तूँ चाखहि सादु ॥
चाखत होइ रहहि बिसमादु ॥
अंम्रित रसना पीउ पिआरी ॥
इह रस राती होई त्रिपतारी ॥ (अंग-180)

ऐ मनुष्य! जितने भी रस तू अपनी रसना द्वारा चखता है, उनसे तेरी भूख नहीं मिटती, तृप्ति नहीं होती, तृष्णा शान्त नहीं होती। परन्तु जब तूने वाहिगुरु के नाम का रस चख लिया तो समझ ले कि तेरी तृष्णा सदा-सदा के लिए शान्त हो जाएगी, तू सदा के लिए आनन्दित हो जाएगा। गुरु की बाणी, नाम-रस को अमृत बताते हुए उसे चखने का आदेश देती है, जिसे पीकर मनुष्य अमर हो जाता है, मृत्यु रहित हो जाता है, आवागमन का चक्र मिट जाता है।

फरीदा सकर खंडु निवात गुडु माखिउ मांझा दुधु ।।

सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ।। (अंग - 1376)

गुड़ - शक्कर, मिश्री - चीनी, शहद और दूध आदि मीठी चीजों का रसास्वादन हम करते रहते हैं। ये सभी रस मीठे तो है परन्तु सबसे उत्तम रस, जो नाम का रस है उसका मुकाबला नहीं कर सकते। अत: हमें अन्य मीठे रसो को त्याग कर, नाम के महान रस को चखने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। जब गुरुमुख व्यक्ति नाम रस का पान कर लेता है तो अन्य सभी स्वतुएँ तुच्छ और कड़वी लगने लगती हैं : -

सभे वसतू कउड़ीआ सचे नाउ मिठा ।।

सादु आइआ तिन हरि जनां चखि साधी डिठा ।। (अंग - 321)

गुरु साहिब कहते हैं कि हमने सब वस्तुओं का स्वाद चख कर देखा है परन्तु जब तेरे नाम का रस चखा तो वह सबसे अधिक मीठा अनुभव हुआ। जिन वस्तुओं के रस को हम मीठा समझ कर पान करते हैं, वास्तव में उनमें वह कड़वापन छिपा है जो शारीरिक और मानसिक रोग पैदा करता हैं। गुरुवाक है : -

मिठा करि कै कउड़ा खाइआ ।।

तिनि कउड़ै तनि रोगु जमाइआ ।।

जे फिरि मिठा पेड़ै पाइ ।।

तउ कउड तणु चूकसि माइ ।।

नानक गुरमुखि पावै सोइ ।।

जिसनो प्रापति लिखिआ होइ ।। (अंग - 1243)

जब नाम का मीठा रस प्राप्त हो जाए तो सारा कड़वापन दूर हो जाता है। परन्तु ऐसा रस भाग्य से ही मिलता है। गुरु की संगति से मिलता है, गुरु के द्वारा, गुरु की कृपा से मिलता है। राम कली राग में, 'अनन्द' बाणी शीर्षक के अन्तर्गत, श्री गुरु अमरदास जी फरमान करते है : -

ए रसना तू अनरसि राचि रही तेरी पिआस न जाइ ।।

पिआस न जाइ होरतु कितै जिचरु हरि रसु पलै न पाइ ।।

हरि रसु पाइ पलै पीऐ हरि रसु बहुड़ि न त्रिसना लागै आइ ।।

एहु हरि रसु करमी पाइऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ ।।

कहै नानकु होरि अनरस सभि वीसरे जा हरि वसै मन आइ ।। (अंग - 921)

ऐ मेरी जिह्बा! तू और - और रसों के पीछे भटकती फिरती है। बेशक कितना भी भटक ले, तेरी प्यास नहीं बुझेगी। जरा सोचकर देख, जरा ध्यान कर, कभी तेरी प्यास बुझी है ?यह बुझ भी नहीं सकती, जब तक तुझे हरिनाम का रस प्राप्त नहीं होता। हरि नाम का रस जब तुझ पर टपकेगा, (अवश्य टपकेगा, सिमरन करने पर) उसका रस अनुभव करते ही तेरी सारी प्यास बुझ जाएगी। दोबारा फिर प्यास नहीं लगेगी। सतिगुरु की शरण में आने से यह उत्तम वस्तु प्राप्त होती है, जिसे पाकर अन्य थोथे रस विस्मृत हो जाते हैं। नाम का रस तेरे अंतर से ही पैदा होगा : -

घर ही महि अंम्रितु भरपूरु है मनमुखा सादु न पाइआ ।।

जिउ कसतूरी मिरगु न जाणै भ्रमदा भरमि भुलाइआ ।।

अंम्रितु तजि बिखु संग्रहै करतै आपि खुआइआ ।।

गुरमुखि विरले सोझी पई तिना अंदरि ब्रहमु दिखाइआ ।।

तनु मनु सीतलु होइआ रसना हरि सादु आइआ ।। (अंग - 644)

हमारी दशा उस मृग जैसी है, जिसकी नाभि में कस्तूरी होती है। कहते हैं कि जब उसे कस्तूरी की खुशबू आती है तो वह उसे ढूँढने के लिए इधर-उधर दौड़ता है। उसे इस बात का ज्ञान ही नहीं कि कस्तूरी उसकी नाभि में ही है। अमृत-रस का भण्डार हमारे शरीर के अंदर ही स्थित है जो वाहिगुरु के नाम सिमरन से प्राप्त होता है। परन्तु हम उस रस को पाने के लिए व्यर्थ ही इधर उधर पदार्थो और शरीरों के पीछे भागते रहते हैं।

रसना (जिह्बा) से अगला स्वाद है, अच्छे सुन्दर वस्त्रों तथा गहनों से शरीर का शृंगार करना और आनन्दित होना। प्राचीनकाल में मखमल और रेशम के वस्त्रों को उत्तम माना जाता था। साधारण लोग तो खादी ही पहनते थे। अब तो विज्ञान की उन्नति से नित्य गए डिजाइन और नाम के वस्त्र बन रहे हैं। सोना-चाँदी हीरे आदि पहन कर, मनुष्य समझता है कि उसे आनन्द प्राप्त होगा। परन्तु सदैव स्थिर रहने वाला सुख इनसे नहीं मिल सकता।

चोआ चंदनु अंकि चड़ावउ ॥

पाट पटंबर पहिरि हडावउ ॥

बिनु हरि नाम कहा सुख पावउ ॥ (अंग-225)

रेशम के वस्त्र पहनने या शरीर पर कई प्रकार के सुंगधित इत्र आदि लगाने से कोई शारीरिक सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इनसे तो मन में विकार ही उत्पन्न होते हैं जो मन को दु:खी करते हैं। विकारों की पूर्ति हुई तो कुछ समय के लिए रस मिल गया और अगर पूर्ति न हुई तो क्रोध, गुस्सा-गिला और कलह क्लेश ही प्राप्त होगा जिससे तन और मन रोगी होने लगते हैं।

बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु ॥

जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ (अंग-16)

इसी तरह मनुष्य बड़ी-बड़ी कोठिआं बनाकर उनमें रहता है, बड़े-बड़े महलों का स्वामी बन कर और जमीन जायदाद बढ़ा कर सुख पाना चाहता है। बड़े-बड़े कारखानों का मालिक बन कर, अपने अधीन नौकर चाकर रखकर तथा कार स्कूटर घोड़े आदि सवारियों में आनन्द ढूँढता है। परन्तु ये सारी वस्तुएँ उसे हमेशा रहने वाला सुख और आनन्द नहीं दे सकती, अगर उसके पास वाहिगुरु का नाम नहीं है। इन्द्रिय-रसों को मनुष्य सर्वोच्य आनन्द मानता है। विषय विकारों में वह इतना डूब जाता है कि और किसी वस्तु की उसे सुध-बुध नहीं रहती। काम-रस को भोगने और कामिनी की सुन्दरता का रस लेने में वह जीवन बिता देना चाहता है। इन्द्रिय-भोग के सुखों को वह त्यागना नहीं चाहता। श्री गुरु अरजन देव जी समझाते हुए कहते हैं कि हे भाई -

छोडि छोडि रे बिखिआ के रसूआ ॥

उरझि रहिओ रे बावर गावर

जिउ किरखै हरिआइओ पसूआ ॥ (अंग-206)

हरी-हरी घास देखकर जैसे पशु मस्त हो जाता है, इसी प्रकार तू भी विषयों के रस में मग्न है। हे भाई, ये रस चिरस्थाई नहीं है, बल्कि एक निमिष के स्वाद के लिए अनेकों दु:ख भोगने पड़ते हैं और पछताना पड़ता है :-

निमख काम सुआद कारणि कोटि दिनस दुखु पावहि ॥

घरी मुहत रंग माणहि फिरि बहुरि बहुरि पछुतावहि ॥ (अंग-403)

इसलिए, संयम में रहते हुए, इनका तयाग करना ही उचित है। बहुत सारे लोग नाम का रस पिए बगैर, इस संसार सागर में डूब रहे हैं और सच्चे सुख से वंचित रह जाते है :-

बिखै बनु फीका तिआगि री सखीए नामु महा रसु पीओ ॥

बिनु रस चाखे बुडि गई सगली सुखी न होवत जीओ ॥ (अंग-802)

रुप, रस, नाम-रस के बिना थोथा है :-

रूप सुंदरीआ अनिक इसतरीआ ॥

हरि रस बिनु सभि सुआद फिकरीआ ।। (अंग - 385)

सतिगुरु हमें नाम के महारस को पीने की प्रेरणा देते हैं। हमारे शरीर के नौ द्वार हैं - दो आँखें, दो कान, दो नासिका-रन्ध्र, एक मुँह और दो इन्द्रियाँ। इनके माध्यम से हम विभिन्न प्रकार के रस ग्रहण करते हैं। परन्तु गुरबाणी के अनुसार इनके द्वारा प्रदान किए गए रस बिल्कुल हो फीके है : -

नउ दरवाजे नवे दर फीके रसु अंम्रितु दसवे चुईजै ।। (अंग - 1323)

एक और दरवाजा जो हमारे शरीर में गुप्त और अदृष्ट रूप में विद्यमान है, दसम-द्वार कहलाता है। उस द्वार पर जब हम दस्तक देते है, उसे खोलने का प्रयत्न करते हैं तथा सिमरन द्वारा बार बार द्वार खटखटाते हैं तो उस दसम-द्वार से नाम रस की प्राप्ति होती है, जो अमृत रस है और शेष सारे रसों से मीठा, ऊँचा और पवित्र है : -

अनहद सबदु दसम दुआरि वजिउ

तह अंम्रित नामु चुआइआ था ।।

तोटि नाही मनि त्रिसना बूझी अखुट भंडार समाइआ था ।। (अंग - 1002)

सुंदर दृश्य देख देख कर, आँखें तृप्त नहीं होती। दूसरों की निन्दा और अपनी स्तुति नित्य सुनने पर भी कान तृप्त नहीं होते। सुगंधि ले ले कर भी नाम तृप्त नहीं होता। जिह्बा अनेक पदार्थो के रस चखती हुई भी कभी संतुष्ट नहीं होती। इसी तरह, हम कितनी लम्बी आयु क्यों न भोग लें, मरने को जी नहीं चाहता क्योंकि जीने में भी रस है। भाई गुरदास जी कहते है - कि है भाई ! असली आनन्द तो गुरु के प्यार में है, गुरु के प्रेम में है। गुरु के साथ प्रीति जोड़ना भी सत्य वस्तुए है, सच्ची धार्मिक मर्यादा है : -

अखी वेखि ना रजीआ बहु रंग तमासे ।

उसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे ।।

स्वादी जीभ न रजीआ करि भोग बिलासे ।

नक ना रजा वासु लै दुरगंधि सुआसे ।

रजि न कोई जीविआ कूडे भरवासे ।

पीर मुरीदां पिरहड़ी सची रहरासे । (भाई गुरदास जी)

गुरु के प्रेम में, गुरु के नाम का रस जो जिज्ञासु पीता है, अन्य रस सहज ही उससे छूट जाते हैं, क्योंकि नाम रस चखकर पता चल गया इसके बराबर कोई और रस नहीं है। यही रस उत्तम है। फिर जीव सदैव इसी रस के साथ जुड़ा रहना चाहता है : -

राम रसु पीआ रे ।। जिह रस बिसरि गए रस अउर ।। (अंग - 337)

बिसर गए और सब रस । फिर वह स्वयं पुकार-पुकार कर कहने लगता है कि अब इस रस को छोड़ दूसरे रस अच्छे नहीं लगते : -

इह रस छाडे उह रसु आवा ।।

उह रसु पीआ इह रसु नहीं भावा ।। (अंग - 342)

गुरसिक्ख फिर अन्य लोगों को भी यह अमृत पीने के लिए प्रेरित करता है। जिसने अमृतरूपी नाम रस पी लिया, वह तृप्त हो गया। अपनी तृप्ति की बात बताते हुए वह दूसरे साथियों से भी एक बार इस अलौकिक रस को पी कर देखने के लिए कहता है : -

हरि रसु पीवत सद ही राता ।।

आन रसा खिन महि लहि जाता ।।

हरि रस के माते मनि सदा अनंद ।।

आन रसा महि विआपै चिंद ।।

हरि रसु पीवै अलमसतु मतवारा ।।

आन रसा सभि होछे रे ।। (अंग - 377)

जब पीकर देखोगे, फिर अन्य सारे रस फीके, नज़र आएँगे और :-

जिन चाखिआ तिसु आइआ सादु ।।

जिउ गूंगा मन महि बिसमादु ।।

आनद रूपु सभु नदरी आइआ ।।

जब नानक हरि गुण आखि समाइआ ।। (अंग - 801)

चखने पर तुम बता भी नहीं सकोगे। गूंगा अगर स्वादिष्ट भोजन खा ले और उससे स्वाद पूछा जाय तो वह क्या बता सकेगा? कुछ भी नहीं। नाम-रस ऐसा अलौकिक है कि चखने वाला ब्यान ही नहीं कर सकता। बस विस्मित हो जायगा। वाह-वाह ही उच्चारण करता रहेगा। वाह-वाह की ध्वनि में विचरण करता हुआ, गुरु दरबार के और अनेकों बिस्मयपूर्ण कौतुक देखेगा। इस हालत को प्रकट नहीं किया जा सकता। गूँगा सिर हिला कर, हाथ से ताली मार कर, गुन-गुन कर कुछ बोलने की, कुछ बताने की कोशिश करेगा। यही नाम-रस को पीने वाले का हाल है। अब प्रश्न यह उठता है कि नाम-रस प्राप्त कैसे हो?

गुरमुखीआ सोहागणी तिन दइआ पई मनि आइ ।।

सतिगुर वचनु रतंनु है जो मंने सु हरि रसु खाइ ।। (अंग - 41)

गुरु धारण करके फिर उसकी आज्ञा का पालन करना। गुरु-गुरबाणी आधुनिक काल के सम्पूर्ण और प्रत्यक्ष गुरु है। गुरु के 'वचन' को जब जीवन में उतारेंगे तो सतिगुरु प्रसन्न होंगे, दया करेंगे और नाम-रस का दान दे देंगे।

हिरदै नामु अंम्रित रसु रसना

रसु गावहि रसु बीचारे ।।

गुर परसादि अंम्रितु रसु चीनिआ

ओइ पावहि मोख दुआरे ।। (अंग - 1199)

जैसे पानी की धारा ऊँचे पर्वतों से नीचे की ओर बहती है, अपने फव्वारे चलते देखे होंगे। उनमें से पानी कैसे बाहर आकर पहले ऊपर की ओर उछलता है, फिर नीचे की ओर गिरता है। यह दृश्य बड़ा मनमोहक और सुन्दर लगता है। वैसे ही सिमरन के समय, नाम के रस की फुहार, हृदय में से उठ कर सारे शरीर के राम रोम में फैल जाती है। जिससे हमारा शरीर और मन आनन्दित हो जाता है।

नाम जपने वाला, नाम-रस प्राप्त करने वाला सांसारिक रसों की ओर नहीं दौड़ेगा। दूसरे रसों में उसे आनन्द ही नहीं आएगा। वह सांसारिक रसों को नाम मात्र भोगता हुआ, नाम रस को ही महत्व देगा और उसमें डूबकियाँ लगाता रहेगा।

अवरि साद चखि सगले देखे

मन हरि रसु ते मीठा जीउ ।। (अंग - 100)

एको नामु अंम्रितु है मीठा जगि निरमल सचु सोई ।। (अंग - 1259)

वाहिगुरु सिमरन में जिज्ञासु जिस रस को प्राप्त करना है, सदैव उसी की ताक में रहता है और उसी की ही मस्ती में मगन रहता है। इस तरह :-

हरि बिनु कछु न लगाई भगतन कउ मीठा ।।

आन सुआद सभि फीकिआ करि निरनउ डीठा ।।

अगिआनु भरमु दुखु कटिआ गुर भए बसीठा ।।

चरन कमल मनु बेधिआ जिउ रंग मजीठा ।। (अंग - 708)

हुकमि रजाई चलणा

(प्रभु – इच्छानुसार जीवन बिताना)

कहने सुनने में तो 'हुक्म' शब्द बड़ा सरल है और इसका अर्थ भी बड़ा सीधा प्रतीत होता है जिसका भाव है 'आज्ञा'। 'रज़ा'। भी हुक्म का ही दूसरा रूप है और इस तरह 'भाणा' शब्द भी यही अर्थ रखता है। हुक्म, भाणा तथा रज़ा के आन्तरिक भाव पर ध्यानपूर्वक विचार करने से एक सिद्धांत सामने आता है। कहने सुनने से ऊपर उठ कर, हुक्म के इस सिद्धांत पर गहरी सोच विचार पर पता चला है कि जीवन का सारा रहस्य ही इन शब्दों के अमल में समाया हुआ है। ईश्वर का हुक्म (Will) समझना, उसकी आज्ञा (रज़ा) में रहना और इस हुक्म को सच्चा समझ कर, ईश्वर की इच्छा को मान लेना, उसकी इच्छा और मर्जी के अनुसार जीवन गुजारने की भावना को अंगीकार (स्वीकार) करना, सुखों की प्राप्ति का साधन है। 'भाणा मंने, सो सुख पाए' महावाक अनुसार ही जीवन सुखमय बन सकता है।

हुक्मे अंदर सभु को : श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी, बार-बार, स्थान-स्थान पर यही पुकार रही हे कि हे भाई! इस संसार में, इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ घट रहा है वह सब कुछ उस प्रभु की आज्ञानुसार ही है। ये दिन-रात, गर्मी-सर्दी, चाँद की घटती बढ़ती कलाएँ, चाँद सूरज और सितारों की क्रियाएँ, सूर्य की गर्मी और चाँद की शीतलता सब उसके हुक्म का खेल है। **'जंमण मरना हुक्म है, भाणे आवै जाइ'**, जन्म-मरण, इंसान की नित्य की क्रियाएँ, धरती का मनुष्यता के लिए माँ का रोल अदा करना, और दिन तथा रात का इंसान को दाई माँ की तरह खेलना, सब उसकी आज्ञा के ही करिश्मे हैं।

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकमि न कोइ ।।

नानक हुक्मै जो बूझै त हउमै कै न कोइ ।। जपु जी)

आज्ञानुसार ही मनुष्य के शरीर की रचना होती है। आज्ञानुसार ही जीव जन्तु पैदा होते हैं। उसकी आज्ञानुसार ही मनुष्य को प्रशंसा मिलती है और इसी आज्ञा के अनुसार मनुष्य दु:ख-सुख भोगता है। कईयों को उसका अनुग्रह प्राप्त होता है और वे आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं, तथा कुछ जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं।

'हुक्म' की समझ आ जाने पर ही, उस समझ के अनुसार आज्ञाकारी बन कर मनुष्य अपनी 'मैं' को त्याग सकता है अन्यथा नहीं। जब ज्ञान हो जाता है कि हमारा अपना किया कुछ नहीं होता, न हो सकता है और न ही होगा। हमें और सारे ब्राहमाण्ड को चलाने वाला तो केई और (कर्त्ता पुरख) ही है। दु:ख सुख देने वाला तो 'करतार' है। प्रतिदिन जो कुछ हमारे साथ घटता है, वह हमारे वश की बात नहीं है।

बल्कि :-

जिउ जिउ तेरा हुकमु तिवै तिउ होवणा ।।

जह जह रखहि आपि तह जाइ खड़ोवणा ।। (वार गूजरी म -5)

यदि हम घर से, पश्चिम जाने की तैयारी करके निकलते हैं, घर से चल पड़ते हैं पर कई बार ऐसा होता है कि हम पश्चिम की जगह पूर्व की ओर अचानक ही किसी विशेष कारण से चले जाते हैं। जरा सोचिए, क्या यह हमारे वश की बात है। हमने लोगों को आम कहते सुना है कि तैयार तो अमुक जगह जाने के लिए हुए थे परन्तु दरवाजा बन्द कर ही रहे थे कि अमुक व्यक्ति आ गया और फिर उसके साथ ही जाना पड़ा। चले तो थे दिल्ली की ओर, अमृतसर कैसे पहुँच गए! चले तो थे चण्डीगढ़ से चंडी मंदिर के लिए, परन्तु पहुँच गए खरड़, अजीब बात है। किस समय क्या होना या करना है, गुरबाणी के अनुसार, वह सब कुछ निश्चित है, पहले से ही नियम है। हमारी कोई चतुराई या समझदारी वहाँ काम नहीं आती :-

सिआनप काहू कामि न आत ।।

जो अनुरूपिओ ठाकुर मेरै होइ रही उह बात ।। (अंग-496)

बात वही होगी, जो वाहिगुरु की इच्छा के अनुकूल है। चाहे हम कितने भी उपाय करें, कितनी चतुराईआँ करें, मन में कितनी भी योजनाएँ बनाएं। ईश्वर ने जो नियत कर रखा है वह अवश्य होकर रहेगा :-

अनिक उपाव चितवीअहि बहुतेरे

सा होवै जि बात होवैनी ॥

अपना भला सभु कोई बाछै

सो करे जि मेरै चिति न चितैनी ॥

जो बात कभी मेरे ख्याल में भी नहीं थी, वही हो गई। वही हो जाती है। हर कोई अपनी भलाई ही चाहता है। अपनी खुशी के लिए अनेक उपाय करता है, हाथ पैर मारता है, मगर होगा वही जो उस सच्चे पातशाह को मंजूर है। जो उसका हुक्म है वही घटित होता है। गुरु जी यह भी उपदेश देते हैं कि न कोई मरता है न किसी का विनाश होता है। जीव-आत्मा तो अमर है, वह हमेशा रहती है :-

इहु तो रचनु रचिआ करतारि ॥

आवत जावत हुकमि अपारि ॥

नह को मूआ नह मरणै जोगु ॥

नह बिनसै अबिनासी होगु ॥ (अंग-885)

आवागमन बना रहता है और वह वाहिगुरु के हुक्म में चलता हैं यह उस कर्त्ता की रचना है। खेल तमाशा है। रिश्तेदार सम्बन्धी, पिछले जन्म के संयोग से मिलते है, और उनके साथ मिलकर दु:ख सुख भोगना पड़ता है। यह सब कुछ किसी हिसाब-किताब (लेखा) में होता है, **'संजोग विजोग दुइ कार चलावै, लेखै आवहि भाग'**, सारा चक्र मिलन और बिछुड़ने का चल रहा है। कोई जुड़ गया कोई टूट गया।

'बुरा नहीं सभ भला ही है रे', यह हुक्म का खेल ऐसा है कि जो उसको भाता है, अच्छा लगता है, वही करता है और वह करता भी अच्छा ही है। यह हमारा भ्रम है कि हमारा बुरा हो गया। महाराज कहते हैं कि बुरा कुछ नहीं सब भला ही भला है। इंसान सोचता है कि मैं हार गया, परन्तु महाराज हार को भी जीत कहते हैं। सब जीत ही जीत है। जो वह करता है उसे भला मानने में ही हमारी भलाई है।

जो तुधु भावै साई भली कार ॥

तू सदा सलामति निरंकार ॥ (जपुजी)

गुर सिक्ख उसकी इच्छा को अटल समझ कर उसके आगे सिर झुका देता है। उसका भाणा (इच्छा) अटल है, अमर है, अमिट है, सदैव है, और नित्य है और है भी सच्चा :-

जो तुधु भावै सो भला पिआरे तेरी अमरु रजाइ ॥ (अंग-432)

ऐसे सत्य आदेशों को मान कर ही हम सचिआर (सत्यधारी) बन सकते हैं। जरा सोचिए कि सांसारिक तौर पर किसी मिनिस्टरी लेवल पर कोई हुक्म (Order) आ जाए तो अधिकारी (Officers) अधीनस्थ (Subordinates) से लेकर सेवक तक किसी की मजाल हो सकती है कि वह आज्ञा का उल्लंघन करे ?नहीं। क्योंकि सब को पता है कि अगर आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो उनका क्या परिणाम भुगतना पड़ेगा। और दैवी हुक्म तो फिर किसी सांसारिक बादशाह का नहीं, यह तो सच्चे पातशाह, सबके सृष्टा, सबके पालक का हुक्म होता है। इस हुक्म की बिना किसी आनाकानी के, बिना किसी विरोध के प्रसन्नचित्त से, पालना करें, तब ही उसके दरबार में स्वीकृत हो सकते हैं। 'हुक्म' से इंकारी होने पर धक्के ही प्राप्त होते हैं और उसकी कृपा के पात्र बनने से भी वंचित रह जाते हैं।

हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु

ता खसमै का महलु पाइसी ॥

खसमै भावै सो कर मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी ।।

ता दरगह पैधा जाइसी ।। (अंग - 471)

यदि उस के (प्रभु के) किए को बुरा कहेंगे तो गुरु नानक देव जी फरमाते हैं कि तुम गँवार हो, मूर्ख हो। प्रभु के किए की निन्दा न करें। उसे प्रसन्नचित स्वीकार करें। उसे स्वीकार करने में ही भलाई है। 'जे को आखै बोल विगाड़ ता लिखीए सिर गावारा गावार', तब तो उससे प्रश्न भी नही कर सकते, उसे कोई हुक्म भी नही कर सकते **'जो तिस भावै सोई करसी फिर हुकमि न करना जाई'**, और **सुआल जुआब दोवें करे मुदहुं घुथा जाइ।'** क्योंकि वह सच्चा स्वामि है। दयालू है, कृपालू है। सदैव सबके संग है। उसका हुक्म स्वामि है। दयालू है, कृपालू है। सदैव सबके संग है। उसका हुक्म सदैव सत्य होता है। वह हमेशा माता पिता की तरह हमारा पालन पोषण करता है। वह आज्ञाकारी पुत्रों का ही नहीं, कृतघ्नों का भी पालन पोषण करता है। किसी को ले जाने की आज्ञा भेजता है, वह झूठी नहीं होती। उसके कर्म सदैव निर्मल है और देन सदैव सच्ची है। सच्चे पातशाह की कुदरत (शक्ति) सच्ची है। लाखों करोड़ों जीव, उसे सच्चा कह कर उसके गुण गाते हैं। वह लाखों करोड़ों को सच्चा सम्मान और सच्चा बल देता है। वह किसी को इस संसार में भेजता है और किसी को वापिस बुला लेता है। यह सब सच है :-

सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु ।।

सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु ।।

सचा तेरा करमु सचा नीसाणु ।। (अंग - 463)

झूठ की दीवार : 'आसा दी वार' में श्री गुरु नानक देव जी फरमाते हैं कि सत्य की सूझ न होने के कारण, हम हुक्म के सत्य को छोड़ कर झूठी दुनियाँ में लिप्त रहते हैं। वे कहते हैं कि एक 'वाहिगुरु' के बिना सब झूठ ही झूठ है। यह जो कुछ भी हमें नज़र आ रहा है, सब झूठ का ही फैलाव है। इस संसार के राजा महाराजा, प्रजा, राजमहल बाग बगीचे बड़ी बड़ी कोठियाँ और कोठियों में रहने वाले सब शरीर मिथ्या है, नाशवान है। सोना चाँदी, सुंदर वस्त्र आदि जो हम पहनते हैं या पहनना चाहते है, सब व्यर्थ है। सुंदर रुप और सुडौल शरीर, जिस पर मन सदैव आकर्षित रहता है, वह भी चिर स्थाई नहीं है। सारा संसार धूएं के पहाड़ जैसा है। हाथी घोड़े, तथा कारों का स्वामित्व, ऊँची सरदारी तथा राजसत्ता सब थोथे है। जब हमारा कोई प्रियजन इस संसार से कूच कर जाता है। तो हम बहुत दु:खी होते हैं, विलाप करते हैं परन्तु प्राप्ति कुछ नहीं होती। सच्चाई तो यह है कि इस शरीर से जीवात्मा एक दिन अवश्य चली जाएगी और यह शरीर नष्ट हो जाएगा। गुरु जी कहते है कि हम स्वयं मिथ्या होकर, सांसारिक मिथ्या वस्तुओं में इतना खचित हो जाते है कि सचाई को भूल जाते है और दु:खी होते है। मित्रता उसी वस्तु से करनी चाहिए जो सच्ची तथा स्थाई हो।

किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ।। (अंग - 468)

परन्तु यहाँ तो कुछ भी स्थाई नहीं। फिर भी यह झूठ का विस्तार इतना मोहक बन कर मनुष्यों को अपने मायाजाल में फँसा रहा है। आवागमन का चक्र जोर शोर से चल रहा है। गुरु जी समझाते है कि हे भाई, ऐसी झूठ (अज्ञानता) की यह धुँधली दीवार ही हमारी सत्य की पहचान में रुकावट है। यह हमें सत्य के ज्ञान से दूर रखती है और जो काम हम संसार में करने के लिए आए है :-

भई परापति मानुख देहुरीआ ।।

गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ।। (अंग - 12)

उस लक्ष्य को प्राप्त किए बिना ही हम अपना जीवन नष्ट करके इस संसार से चले जाते हैं और चौरासी के चक्र में फँस जाते हैं।

दीवार कैसे टूटे :-

किवु सचिआरा होइऐ, किव कूड़ै तुटै पालि । यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका हमारे जीवन से गहरा सम्बन्ध है और यह हमारे जीवन के रहस्य को स्पष्ट करता है। यह प्रश्न गुरु नानक देव जी ने जपुजी की वाणी में उठाया है और प्रश्न के

उत्तर में सम्पूर्ण जपुजी की बाणी उच्चारण की है। एक प्रश्न है, **फेरि कि अगै रखीऐ, जितु दिसै दरबारु।**' इन दोनों प्रश्नों के उत्तर में 'जपुजी' का उच्चारण हुआ। यहाँ हमारे विचाराधीन प्रश्न यह है कि मनुष्य सच्चा कैसे बन या उसे सच्चाई का कैसे पता चले और अज्ञानता की यह धुँधली दीवार कैसे टूटे। यह दीवार, जो सत्य और असत्य की पहचान में बाधक है, मन और आत्मा के बीच का यह धुँधला पर्दा, कैसे शीशे जैसे निर्मल हो जाय जिससे उस पार का सब कुछ नज़र आने लगे। पाप की कालिमा की परत जो मन पर जम चुकी है, वह हमें आत्मा और फिर परमात्मा के दर्शन में बाधा बनती है। गुरु जी ने इस प्रश्न का उत्तर भी साथ दिया है: -

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ।।

हे भाई, जैसा मालिक का हुक्म हो, उसे सत्य करके मानना ही गुरसिक्ख का धर्म है। सांसारिक दृष्टि से वह हुक्म कितना भी नुकसानदायक या दु:खदायक हो, उसे स्वीकार करना ही उचित है क्योंकि उसका हुक्म सदैव सत्य है, पूर्ण है, ईर्ष्या द्वेष रहित है, भलाई से परिपूर्ण है। परन्तु हम उसे समझ नहीं सकते, हमारी समझ से परे की बात है।

स्वामी को वही दास अच्छा लगता है जो उसकी आज्ञा का पालन प्रसन्न चित्त से करे। दास अपने स्वामी की आज्ञा न मानें यह कितनी बुरी बात है। टाल मटोल करने या इंकार करने वाले नौकर को हम मालिक का वफादार नहीं कह सकते, और न ही ऐसा नौकर, मालिक के मन को भा सकता है। मालिक को प्रसन्न करने के लिए उसकी इच्छा अनुसार जीवन जीना अति आवश्यक है : -

खसमै सोई भावदा खसमै दा जिसु भाणा भावै । (भा. गु. वार - 29)

जिस व्यक्ति की हर घड़ी और हर पल, प्रभु के धन्यवाद में गुजरे वही प्रभु को प्यारा लगता है। प्रभु की आज्ञा को प्रसन्नतापर्वूक शिरोधार्य करना ही उसके द्वार को खोलने में सहायक कुंजी (चाबी) है।

तेरा कीता जिसु लागै मीठा ।।

घटि घटि पारब्रहमु तिनि जनि डीठा ।। (माझ म - 5, अष्टपदी - 37)

सोई सिआणा सो पतिवंता हुकमु लगै जिसु मीठा जीओ ।। (अंग - 108)

यथा

नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ।। (अंग - 139)

मालिक का हुक्म पहिचान कर ही उससे मिला जा सकता है। तब तो मन की मति त्याग कर उसकी आज्ञा को पहचानें। दु:ख सुख में उसी का ध्यान करें। उसकी की ही आराधना करें। आज्ञा मान कर ही उसकी भक्ति हो सकती है। हमें चाहिए कि हम अपना आचार व्यवहार उसकी आज्ञा में ढाल लें।

मन की मति तिआगहु हरिजन हुकमु बूझ सुखु पाईऐ रे ।।

जो प्रभु करै सोई भल मानहु सुखि दुखि ओही धिआईऐ रे ।। (अंग - 209)

बड़े बड़े देवी - देवता, ऋषि मुनी योगी - योगेश्वर, उसकी आज्ञा को मान कर ही उसके दरबार में शोभा पाते है। जो नही मानते वे जन्म मरण का दु:ख भोगते रहते हैं।

ब्रहमा बिसनु रिखी मुनी संकरु इंदु तपै भेखारी ।।

माने हुकमु सोहे दरि साचै आकी मरहि अफारी ।।

इसलिए, ऐ मेरे मन! सतिगुर की आज्ञा में रह जिससे तुझे सच्ची दरगाह में सुख प्राप्त हो।

मन मेरे सतिगुर कै भाणै चलु ।।

निज घरि वसहि अंम्रितु पीवहि ता सुख लहहि महलु ।। (अंग - 37)

सतिगुरु ने एक बात समझा दी है कि जो कुछ मालिक (वाहिगुरु) करता है, उसमें खुश रहो! उसकी इच्छानुसार किए गए कार्मो को सत्य मानने से ही, वाहिगुरु जी सहायता करेंगे।

एकु कुसलु मो कउ सतिगुरु बताइआ ॥

हरि जो किछु करे सु हरि किआ भगता भाइआ ॥

जन नानक हउमै मारि समाइआ ॥

इन बिधि कुसल होत मेरे भाई ॥

इउ पाईऐ हरि राम सहाई ॥ (अंग – 176)

सच्चे पातशाह की आज्ञा, सतिगुरु के द्वारा प्रकाशित होती है। गुरु का आँचल पकड़ कर उसके द्वारा प्रदत्त शब्द का अभ्यास करके, उसकी आज्ञा को पहचान सकते है और फिर हुक्म का पालन प्रसन्नता पूर्वक हो जाता है। जब 'अहम' मर गया 'मैं' मिट गई तो फिर करता – पुरख वाहिगुरु ही रह गया। नाम ही नाम रह गया। सतिगुरु के कृपा करके यह समझा दिया कि यह जो हुक्म की चर्चा है यह सब नाम की ही बात है। तब तो नाम जपना चाहिए ताकि हुक्म की प्रतीति हो जाय।

एको नामु हुकमु है

नानक सतिगुरि ढीआ बुझाइ जीउ ॥ (अंग – 72)

असल में हर हालत में वाहिगुरु नाम का जाप करना ही हुक्म है। सतिगुरु स्वयं कृपा करके, केवल नाम के साथ जोड़ कर ही भाणा (आज्ञा) मनवा सकते हैं।

तेरा भाणा तू है मनाइह जिसनो होहि दइआला ॥

उससे गिला करना भी उचित नहीं लगता । उलाहना देना भी उचित नहीं उस परमात्मा पारब्रहम परमेश्वर की लीला अपरम्पार है। हमारे भले बुरे का जितना ख्याल उसको है, वह हम नहीं जान सकते। अगणित खण्ड ब्राह्मण्डों को वह प्रभु नियमपूर्वक निर्विघ्न चला रहा है। उसका प्रबन्ध ऐसा सुंदर और परिपूर्ण है कि हमारा 'किन्तु' करना अनुचित है। यदि करते हैं तो यह हमारी भूल है।

उलाहनो मै काहू न दीओ ॥

मन मीठ तुहारो कीओ ॥ रहाउ ॥

आगिआ मानि जानि सुखु पाइआ

सुनि सुनि नामु तुहारो जीओ ॥ (म – 5, अंग 978)

सो जब तक व्यक्ति आज्ञा नहीं मानता तब तक दुःख पाता है : –

जब लगु हुकमु न बूझता तब ही लउ दुखीआ ॥ (अंग – 400)

'हुक्म' की प्रतीति के लिए, हुक्म की सूझ के लिए हुक्म अनुसार अपना जीवन ढालने के लिए, हमारे वश की बात केवल 'अरदास' है। अरदास करें सतिगुरु के आगे, कि है सच्चे पातशाह, कृपा करो और अपनी आज्ञा में रखो। नाम जपाओ और भव सागर से पार कर दो। अपनी कृपा दृष्टि कर और हमारे अवगुणों को मन में न लाओ : –

लेखै कतहि न छूटीऐ ॥ खिनु खिनु भुलनहार ॥

बखसनहार बखसि लै नानक पारि उतार ॥ (अंग – 261)

विरह (वियोग)

'विरह', आम तौर पर हमारे किसी विशेष प्रेमी या सम्बन्धी, जिसे हम अत्यन्त प्रेम करते है, उसका हमारी आँखों से दूर होने पर, अनुभव होता है। प्रिय या सम्बन्धी का, दूर कही विदेश चले जाना, या सदा के लिए बिछुड़ जाना, किसी गुरु या मार्ग दर्शक से शिष्य का दूर होना और मनुष्य की अपनी जीव आत्मा का अपने मूल परम आत्मा से वियोग को अनुभव करना आदि 'विरह' का दर्द पैदा करने वाले कारण हैं।

श्री गुरु अरजन देव जी को जब उनके पिता श्री गुरु रामदास जी ने लाहौर भेजा, वहाँ उन्हें काफी समय लग गया तो गुरु-पिता की याद सताने लगी। वियोग के दु:ख को सहन न कर पाने पर उन्होंने अपने पिता को एक पत्र लिखा -

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई ॥

बिलप करे चात्रिक की निआई ॥

त्रिखा न उतरै सांति न आवै बिनु दरसन संत पिआरे जीउ ॥ (अंग-96)

पंचम पातशाह (बालक) अरजन देव के मन से दर्द भरी आवाज़ निकली, ऐ मेरे गुरु पिता! मेरा मन तेरे दर्शन का इच्छुक है, और यह चात्रिक (एक पक्षी जो स्वांति नक्षत्र से गिरने वाली बादल की बूंद ही पान करता है) की तरह विलाप कर रहा है। तेरे दर्शन के बिना मेरी प्यास तृप्त नहीं होती और मुझे शान्ति नहीं मिलती, मेरा हृदय अशान्त है। जब इस पत्र का उत्तर किसी कारण से नही मिला तो व्याकुलता और बढ़ गई और एक और पत्र लिखा। परन्तु किसी कारण वश उसका भी उत्तर नहीं मिला तो बिरह में अति बेबस होकर तीसरा पत्र लिखा -

इकु घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता ॥

हुणि कदि मिलिऐ प्रिअ तुधु भगवंता ॥

मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ ॥

हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ ॥ (अंग-96)

मुझे रातों में नीद नहीं आती। रातें सुहाती नहीं, पराई लगती है। जब एक घड़ी तक आपके दर्शन नहीं होते ते तो कलियुग प्रतीत होता है। अब तो घड़ियाँ नहीं, बल्कि साल बीत गए हैं। हे सतिगुरु, अब कब आपके दीदार होंगे और कब मेरी विरह-तृप्त हृदय शीतल होगा?हे मेरे मित्र, प्रिय सतिगुरु! मेरे पिता, मैं आप पर बलिहार जाता हूँ। बिरह का वर्णन करते हुए, एक और स्थान पर कहते हैं :-

विछोड़ा सुणे डुखु विणु डिठे मरिओदि ॥

बाझु पिआरे आपणे बिरही न धोरीदि ॥ (अंग-1100)

प्रिय को देखे बिना, जीवन मृत्यु के समान है। अपने प्रिय के मिलाप बिना हृदय को धीरज नहीं होता।

प्रिय का वियोग, फरीद जी को भी सहन नहीं होता। गलियाँ कीचड़ से भरी हैं, मूसलाधार वर्षा हो रही है। वस्त्र गीले और गन्दे होने का भय भी है, परन्तु प्रिय को मिलने जाने से नही रुक सकते। दर्शन की चाह उन्हे लिए चली जाती है। वर्षा तथा आँधी जैसी बाधाएँ उन्हें रोक नहीं सकती। अगर नहीं जाते हैं तो प्रीति टूटने का भय है -

फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु ॥

चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु ॥ (अंग-1379)

प्रेम का आर्कषण चैन नहीं लेने देता। कहते हैं मैं प्रिय की ओर जरुर चल के जाऊँगा, चाहे मुझे कितनी ही आधाओं का सामना करना पड़े। कठिनाई का हल भी स्वयं ही ढूँढते हैं। अपनी भावना को बल देते हुए कहते हैं :-

भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु ।।

जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु ।।

बेशक मेरी कंबली भीग जाए, परन्तु प्रिय को अवश्य मिलूँगा। मिले बिना कहीं मेरा प्रेम न टूट जाए। विरह मैं सहन नहीं कर सकता। अपने गुरु और मार्ग दर्शक से दूर रहने के कारण अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं : -

फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरह विछावण लेफु ।।

एहु हमारा जीवणा तू साहिब सचे वेखु ।।

मेरे प्रिय! एक बार मेरी ओर नज़र फिरा के देख तो सही कि मेरी क्या दशा है! मैं हाल से बेहाल हो रहा हूँ। मेरी खाट, जिस पर मैं आराम करता हूँ चिन्ता की बनी है और वह दु:खों के ताने बाणे से ही बुनी गई है। बिरह का दर्द और पीड़ा ही मेरा बिछौना और रजाई है। इसी प्रकार मेरा जीवन बीत रहा है।

भक्त कबीर जी को भी विरह ने सांप की तरह डसा। वे कहते हैं कि विरह के इस डंक पर कोई मंत्र भी नहीं चलता। विरह का डसा हुआ व्यक्ति अर्ध-मृत जैसा होकर रह जाता है, उसे जीवित व समझें। वह बावला और दीवाना होकर जीवन व्यतीत करता है।

कबीर बिरहु भुयंगमु मनि बसै मंतु न मानै कोइ ।।

राम बिओगी ना जीऐ जीऐ त बउरा होइ ।। (अंग - 1368)

श्री गुरु अमरदास जी भी प्रभु के दर्शन की प्यास में, विरह की पीड़ा न सहारते हुए फरमाते हैं कि मुझे सदा, नशा करने वालों की तरह, नशा टूटने की अनुभूति होती रहती है। जैसे अफीम खाने वाला, अफीम के बिना एक दिन भी नहीं रह सकता, उसी तरह, हे प्रभु, तेरे बिना मेरे लिए एक क्षण भी रह पाना असंभव है : -

हउ खिनु पलु रहि न सकउ बिनु प्रीतम जिउ बिनु अमलै अमली मरि गईआ ।। (अंग - 836)

चौथे गुरु नानक ने भी विरह के गीत गाए। वास्तव में, विरह का दर्द पैदा हुए बिना, प्यारे प्रभु से मिलन हो ही नहीं सकता। अपने मन की दशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं : -

हरि दसरन कउ मेरा मनु बहु तपतै

जिउ त्रिखावंतु बिनु नीर ।। मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर ।। (अंग - 861)

प्रभु-प्रेम के तीर ने मेरा मन बेध दिया है। जैसे प्यासा व्यक्ति जल के लिए तड़पता है, मैं तेरे दर्शन के लिए तड़प रहा हूँ। दर्शन के बिना मुझे चैन नहीं मिल सकता। गुरु का पद प्राप्त करने से पहले, उनके हृदय में गुरु और परमेश्वर के बिरह के तीक्ष्ण बाण लगे और उन्हें गुरु की शरण में परमेश्वर की भक्ति के द्वारा प्रभु की प्राप्ति हुई, तब उन्हें गुरु की पदवी प्राप्त हुई। सतिगुरु जी कहते हैं: -

किउ जीवनु प्रीतम बिनु माई ।।

जा के बिछुरत होत मिरतका ग्रिह महि रहनु न पाई ।। (अंग - 1207)

प्यारे प्रियतम के बिना कैसे जिया जाए? उसके बिना जीना कठिन है। विरह में जीना एक कठिन खेल है। वियोग की पीड़ा सहन नहीं होती। अगर जीवति है तो समझ लीजिए कि मृतक बन कर ही जी रहे हैं। विरह की पीड़ा से ही वैराग्य उत्पन्न होता है। प्रभु की स्मृति का कर्म बड़ा प्रबल है। यह प्रिय की स्मृति ही है जो चैन से जीने नहीं देती। श्री गुरु नानक देव जी वडहंस राग में विरह का चित्र इस प्रकार खीचते हैं : -

मोरी रुण झुण लाइआ भैणे सावणु आइआ ।।

तेरे मुंध कटारे जेवडा तिनि लोभी लोभ लुभाइआ ।।

तेरे दरसन विटहु खंनीऐ वंञा

तेरे नाम विटहु कुरबाणो ।।

जा तू ता मैं माणु कीआ है

तुधु बिनु केहा मेरा माणो ।।

चूड़ा भंनु पलंघ सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा ।।

एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा ।।

ना मनिआरु न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा ।।

जो सह कंठि न लगीआ जलनु से वाहड़ीआहा ।। (अंग - 557)

बरसात का मौसम है। मोर मीठे बोल बाले रहे हैं। हे बहन! सावन का महीना आ गया। ऐसे में, हे प्रियतम! तेरे रस भरे नयनों ने लोभायमान और मोहित कर लिया है। तेरे दर्शन के लिए मैं अपने शरीर के टुकड़े टुकड़े करके अर्पण करने को तैयार हूँ, और तेरे बिना मुझे गर्व कैसा। हे प्रियतम, तेरे बिना बाहों में चूड़े भी शोभा नहीं देते। पलंग का सुख भी अच्छा नहीं लगता। जो भुजाएँ, प्रिय के गले नहीं मिलती, वे चाहे कितनी सुन्दर चूड़ियों से भरी हो, बिरह की अग्नि में जलती रहती है। भाव यह कि शृंगार और सुख आराम मुझे अच्छे नहीं लगते।

माठि गुंदाई पटीआ भरीऐ मांग संधूरे ।।

अगै गई न मंनीआ मरउ विसूरि विसूरे ।। (अंग - 558)

मैं अपने बालों को संवारती हूँ, गूंथती हूँ, परन्तु अगर तुम्हें स्वीकार ही नहीं तो गहरे दुःख में डूब कर मरणासन्न हो जाती हूँ।

मैं रोवंदी सभु जगु रुना रुंनड़े वणहु पंखेरू ।।

इकु न रुना मेरे तन का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी ।।

सुपनै आइआ भी गइआ मैं जलु भरिआ रोइ ।।

आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेज न सका कोइ ।। (अंग - 558)

मैं रोती हूँ, साथ सारा संसार रोता है। जंगल के पक्षी भी रोते और विलाप करते हैं। मेरे तन का विरह, जिसने मुझे अपनी परमात्मा से अलग करके, बिछुड़ने का अनुभव कराया है, वह नही रोता। कभी - कभी तुम सपने में आकर चले जाते हो और मैं बाद में आँखों से आँसू बहाती रहती हूँ। आँखों से लगातार जल बहता है। रुकता ही नहीं। हे प्रिय! मैं तेरे पास नहीं आ सकती और न ही कोई संदेशा देकर किसी को तेरे पास भेज सकती हूँ। मैं विवश हूँ क्योंकि कोई साधन नहीं। इसीलिए सौभाग्य शालिनी नींद को पुकारती हूँ कि -

आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ ।।

ऐ सौभाग्य शालिनी निद्रा, तेरे आने पर शायद मैं अपने प्रिय को सपने में ही देख सकूँ। वैसे नहीं, तो स्वपन्न में ही दर्शन कर लूँ। यह आतुरालाप हैं वियोगी आत्मा के, नींद के समक्ष कि तू आती रह और मेरे प्रिय के दर्शन करवाती रह। परन्तु कहाँ?नींद भी बेदर्द है, आती ही नहीं।

विरह की पीड़ा के नुकीले बाण ऐसे लगते हैं कि प्रिय का स्मरण स्वयमेव चालू हो जाता है। एक बार अन्तरात्मा में वैराग्य उत्पन्न हो जाय, फिर देखिए किस प्रकार मन सिमरन में निमग्न हो जाता है। सिमरन ही एक मार्ग है जो वियोग को दूर करके, संयोग करवाता है।

गुरबाणी के अनुसार यह दृश्यमान जगत हरेक के लिए मायका (माता पिता का घर) हैं। सबने बारी बारी दूसरी दुनियाँ, अपने ससुराल (प्रलोक) पति परमेश्वर के पास जाना है। सब किसी का गौना होने वाला है। सांसारिक सम्बन्धियों से, हर किसी ने

बिछुड़ना है। किसी ने पहले, किसी ने बाद में। परन्तु अपनी परम आत्मा से तो सभी बिछुड़े हुए है। अगर इस समय, इस जीवन में, बिरह की पीड़ा उत्पन्न हो जाए, वैराग्य हो जाय तो फरीद साहिब के अनुसार यह एक बहुत बड़ी न्यामत (वरदान) होगी। वे कहते हैं कि जिस व्यक्ति के हृदय में विरह की ज्वाला नहीं जली, वह हृदय शुद्ध ही नहीं हो सकता। वह व्यक्ति, इन्सान कहलाने के योग्य नहीं और उसका हृदय शमसान जैसा है। वियोग के बाद, विरह की भट्ठी में जल कर ही, प्रभु से मिलाप हो सकता है। विरह तो प्यारे प्रभु को मिलने का साधन है। इसे कितना भी दुःखदायक करते रहें परन्तु इसका पद तो सुलतानों जैसा है। फरीद जी फरमाते हैं : -

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु ।।

फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै

सो तनु जाणु मसानु ।।33 ।।

गुरबाणी हमें ऊपर की चोटी पर पहुँचाना चाहती है। वह हमें हमेशा प्रिय प्रभु से मिलाप करने का साधन बताती है। वह ऐसे साजन से मिलाप करवाना चाहती है जो कभी न बिछुड़े : -

सजण मिले न विछुड़हि जि अनदिनु मिले रहंनि ।।

इसु जग मलि विरले जाणीअहि नानक सचु लहंनि ।। (अंग - 756)

वह प्रेमी प्रभु सच्चा है, अविनाशी है। अविनाशी पुरुष है और सब में समा रहा है। उसका नाम सत्य है, वाहिगुरु, राम, अल्लाह या God है।

यदि एक बार उसे प्राप्त कर लें, फिर कभी बिछोह के कांटे सहन नहीं करने पड़ेंगे। ये कांटे ऐसे चुभते हैं कि किसी को बता भी नहीं पाते, क्योंकि हर किसी को इसकी समझ नहीं है।

सो हमेशा हमेशा के लिए विरह के दर्द से छुटकारा पाने के लिए अविनाशी साजन को मिलने का प्रयत्न करें। वह कैसे मिलेगा ?विरह को अनुभव करके सतिगुरु के चरणों का आश्रय लेकर, उसके द्वारा बताए हुए 'शब्द' की कमाई करते हुए प्रभु की याद में डूब कर, सिमरन करने से ही हमारा पार उतारा (उद्धार) हो सकता है: -

मारग पंथु न जाणउ विखड़ा किउ पाइऐ पिरु पारे ।।

सतिगुर सबदी मिलै विछुंनी तनु मनु आगै राखै ।।

नानक अंम्रित बिरख महा रस फलिआ

मिलि प्रीतम रसु चाखै ।।

- - - - - - - - - - - - - - - -

साराँश

नाम साधना : यह नामी को मिलने की एक युक्ति है। तीन तत्व हैं इस साधना में – नाम, नामी अत: नाम लेने वाला। वास्तव में तीनों ही अलग–अलग रुप में एक ही श्रोत के अंग है। 'वाहिगुरु' श्रोत है अत: 'वाहिगुरु' ही नाम है उस का तथा नाम लेने वाला (जीवात्मा) भी 'वाहिगुरु–अंश है, एक किरण है। और थोड़ा विचारें तो देखते हैं कि साधन भी 'नाम' ही है। यही 'नाम' संसार का कर्णहार रचयता है। संसार उस की कृत्य है, इसी कृत्य का ही एक कण मनुष्य भी है।

नाम के धारे सगले जंत ।।

नाम के धारे खंड ब्रह्मंड ।।

यथा

नाम के धारे आगास पाताल ।।

नाम के धारे सगल आकार ।। (अंग–284)

'नाम' अपनी कृत्य (संसार) सारे प्राणियों, खंडो–ब्रह्मंडों, आकाशों, पातालों अत: और जो भी दिखाई दे रहे 'आकार' हैं, में बसा हुआ है: –

आपीन्है आपि साजिओ आपीनै् रचियो नाउ ।।

दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।। (अंग–463)

रचयता ने रचना में आसन लगाया हुआ है, जिस का भाव हुआ कि रचना भी 'नाम' ही है :

जो दीसै सो तेरा रूपु ।। गुण निधान गोविंद अनुप ।। (अंग–728)

इस प्रकार 'नाम' ने 'नाम' द्वारा 'नाम' को ही मिलना है। मनुष्य की जीवात्मा टूटी है श्रोत से, बिछुड़ी हुई है अपनी वास्तविका से। क्यों?अपने कर्मो के कारण मनुष्य ने अहंकार धारण कर, कर्त्ता बन के अपनी रचना आरम्भ कर दी अत: इस कर्तापन में ही वास्तविक कर्ता (करतार) को भूल गया। स्वयं करतार (रचयता) बन बैठा, भाव वाहिगुरु से पृथक 'मैं' का भाव इस में आ गया।

किरति करम के वीछुड़े करि किरपा मेलहु राम ।।

चारि कुंट दहि दिस भ्रमे थकि आए प्रभ की साम ।। (अंग–133)

अपनी 'मैं' की मैल इस को जन्मों से लग गई। जीवात्मा, मन का रुप धारण कर गई तथा अपना पृथक अस्तित्व समझने के पाप के कारण काली स्याही जैसी हो गई :

जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होआ सिआहु ।।

खंनली धोती उजली न होवई जे सउ धोवणि पाहु ।।

गुर परसादी जीवतु मरै उलटी होवै मति बदलाहु ।।

नानक मैलु न लगई ना फिरि जोनी पाहु ।। (अंग–651)

पर बेशक 'खनली' (तेली के तेल से सने हाथ पोंछने वाला कपड़ा) तो उज्जवल न हो सके, मन के पाप, मन की स्याही, सत्गुरु के कृपा द्वारा, नाम रुपी साबुन के साथ धोई जा सकती है :

भरीऐ हथु पैरु तनु देह ।। पाणी धोतै उतरसु खेह ।।

मूल पलीती कपड़ु होइ ।। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ।।

भरीऐ मति पापा कै संगि ।। ओहु धोपै नावै कै रंगि ।।

नाम का साबुन कैसे लगाना है? कितना कुछ और कैसे परिश्रम करना पड़ेगा?कितना समय लगेगा?मन की और मैल चढ़ाने से कैसे रोका जाय?मन के ऊपर शब्द को कैसे रगड़ा जाये?यह नाम साधना के महत्वपूर्ण अंग हैं जिन के बारे में चिंतन करते रहना चाहिये।

नाम साधना के लिए मुख्य बाते हैं :-

1. प्रेमा भक्ति सहज से नाम का जाप किया जाये :

सहजे गाविआ थाइ पवै बिनु सहजै कथनी बादि ।।

यथा

सहजि सालाही सदा सदा सहजि समाधि लगाइ ।।

सहजे ही गुण ऊचरै भगति करे लिव लाइ ।। (अंग-68)

2. सेवा, स्मरण, संगत, तीनों का साथ-साथ अभ्यास करे के धैर्य एवं सांत्वना से कमाई की जाय :

थाल विचि तिंनी वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो ।।

अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिस का सभसु अधारो ।। (अंग-1429)

3. रात के अंतिम पहर, अंम्रित के समय निद्रा का त्याग कर, स्मरण करना अत्यंत आवश्यक है,

झालागे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि ।। (अंग-255)

4. अंम्रित का समय, रचयता से जुड़ने के लिये अति ही सुहावना समय है। इस समय नाम साधना करना बहुत जरुरी है। पर साधना को केवल यहीं तक सीमित नहीं रखा, यह तो 24 घंटे का कार्य है, श्वास श्वास जपने का आदेश है :-

दिनु भी गावउ रैनी गावउ गावउ सासि सासि रसनारी ।। (अंग-401)

5. नाम का जाप, रसना से शुरु हो कर, कंठ तथा सुरति द्वारा लिवलीनता की अवस्था तक पहुँचता है। सुरति में अजपा जाप होता है अत: लिवलीनता की अवस्था में भीतरी गुप्त नाम प्रगट होता है, तब शब्द- धुनि एवं बाणी का लाभ होता है :

एका बाणी एकु गुरु एको सबदु वीचारि

सचा सउदा हटु सचु रतनी भरे भंडार ।। (अंग-646)

एक नाम का भेद खुलता है। मन सहज अवस्था को प्राप्त कर के परम आनन्द में निवास करता है। इन अवस्थाओं को अभ्यासी सहज-सहज, गुरु कृपा द्वारा प्राप्त करता है।

6. नाम साधना के समय, मन का शब्द में एकाग्र होना आवश्यक है। मन को शब्द में टिकाव लेने के लिये यह ज़रुरी है कि इस के ऊपर पदार्थवाद का असर कम पड़ने दिया जाय। केवल जीवन निर्वाह मात्र आवश्यक विचार ही इस के ऊपर टेप होने दिये जायें। नाम के निवास के लिये मन शीशे की भाँति साफ होना जरुरी है।

7. गुरबाणी के पाठ से ध्यान तथा एकाग्रता के लिये बहुत मार्ग दर्शन मिलता है। बार-बार, समझ कर जितना गुरबाणी का पाठ अधिक से अधिक किया जाये, हमारी शंकाओं के निवारण करने में सहायक होता है अत: नाम के साथ प्यार को बढ़ाता है। कथा, कीरतन करना या सुनना नामी के देश पहुँचाता है।

8. जीवात्मा की अपने प्रति ज्ञान होने से अपने मूल के प्रति मिलाप की तड़प उठती है, वैराग्य पैदा होता है। जीव वियोग के गीत गाता है,

विछोड़ा सुणे डुखु विणु डिठे मरिओदि ।।

बाझु पिआरे आपणे बिरही ना धोरोदि ।। (अंग-1100)

9. जीव के जीवन में दुख सुख साधारणतया आते रहते है :

सुखु दुखु दुए दरि कपड़े पहिरहि जाए मनुख ।। (अंग-149)

हर हालत में हुक्म के सिद्धांत से बंध कर, सहज अवस्था में रहना स्वामी की खुशी प्राप्त करना है: -

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोई ।।

को मन, वचन तथा क्रम में धारण कर लेना स्मरण - साधना को फलीभूत करता है।

10. इस मार्ग में उन्नति करने के लिये नित्याप्रति अपने जीवन में गुरु साहिबान के वचनों को याद रखने की आवश्यकता है। स्वच्छ, बिना किसी छल कपट का व्यापार, किसी का दिल न दुखाना, चोरी, व्यभिचार, निन्दा - चुगली, झूठ, किसी दूसरे का हक न मारना, घूस न देना। हर्ष - शोक, मान - अपमान, अत: बैर - विरोध से अलिप्त रहना। अल्प आहार तथा **'सुलप - सी निद्रा'** पर पहरा देना।

सतिगुरु के प्रदान किये हुए ज्ञान के अनुसार यह बिन्दु गिने हैं। अन्य असंख्य अंग भी है। कथन में तो प्रभु की महिमा आ ही नहीं सकती।

इन सारे पहलुओं पर विचार करते हुये, इन को व्यवहार में लाना, निष्काम सेवा का पंथ अपनाना अत: परोपकारी जीवन व्यतीत करना। इस प्रकार तन तथा मन पवित्र होगे अत :

गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै ।।

नानक गुरमुखि साचि समावै ।। (अंग - 941)

की उच्च अवस्था प्राप्त होगी। प्रभु प्यारे का मिलाप तथा प्यार मिलेगा। सतिगुरु की कृपा से 'अंश' अपने 'अंशी' में समा जावेगी।

• ••••••

जसबीर सिंघ

Ph. : (0172-2696891),

09988160484

Type Setting :

Radheshyam Choudhary

Mob. : 098149- 66882